UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182090
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/L62N Accession No. G.H.1800

Author लेसिंग

Title नाटक 1932

This book should be returned on or before the date last marked below.

नातन

अर्थात्

जरमन नाटक-कार लेसिंग के "*Nathan der Weize*" के उर्दू अनुवाद का

हिंदी संस्करण

इलाहाबाद

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०

१९३२

Published by
The Hindustani Academy, U. P.,
Allahabad

Checked 1965

Checked 1969

First Edition
Price, Rs. 1/4.

Printed by Shardaprasad Khare,
at the Hindi Sahitya Press,
Allahabad.

वक्तव्य

कुछ दिन हुए मौ० मुहम्मद नईमुर्रहमान, एम्० ए०, ने जरमनी के सुप्रसिद्ध नाटककार लेसिंग के "Nathan der Weize" का मूल जरमन से उर्दू में अनुवाद किया था जिसे हिंदुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०, ने सन् १९३० ई० में प्रकाशित किया। अब इसी उर्दू अनुवाद से मैंने यह हिंदी संस्करण संपादित किया है। प्रोफ़ेसर श्रीयुत् धीरेन्द्र वर्मा, एम्० ए०, ने इसकी आवृत्ति करके मुझे विशेष कृतार्थ किया है।

जनवरी १९३२ — मि० अबुलफ़ज़्ल

विषयसूची

भूमिका	... ...	१
लेसिंग की जीवनी	.	३
लेसिंग की लेखनशैली	...	१२
जरमन नाटक और लेसिंग	...	१३
नातन	... ...	१५
नातन के पात्र	... ...	२३
नातन		
पहला अंक	... ...	१
दूसरा अंक	... ...	६१
तीसरा अंक	... ...	१२०
चौथा अंक	... ...	१८३
पाँचवाँ अंक	... ...	२४२
टिप्पणी	... ...	२९९

भूमिका

आजकल हमारे देश में जो उपद्रव उपस्थित है उसके कारणों में से एक बड़ा कारण यह है कि परस्पर लड़नेवाले एक दूसरे के धार्मिक मतों से अज्ञान हैं और प्रत्येक मतावलंबी संकीर्ण हृदय और अदूरदर्शिता से काम ले रहा है। दुर्भाग्यवश साहित्य भी ऐसा निकल रहा है जो एक को दूसरे से लड़ाने में सहायता दे रहा है। यदि दोनों ओर समझ होती और सहृदयता से काम लिया जाता तो जान पड़ता कि सत्य सब जगह और सब के पास है। हमारे देश की यह अवस्था कोई विचित्र नहीं है। यूरोप में भी ईसाई और मुसलमान एक दूसरे के शत्रु थे, परंतु जब प्रत्येक ने अपने २ स्थान पर ध्यान दिया तो दोनों ने अपनी संकीर्णता को स्वीकार किया। यह नहीं हो सका और न हो सकता है कि तर्क वितर्क का द्वार बंद हो जाय। परन्तु यूरोप ने बुद्धि का अनुसरण किया। इस विषय में "नातन" जैसे नाटकों ने आरंभ किया। मैं भी इसीसे आरंभ कर रहा हूँ। सद्भाव का बदला परमात्मा के हाथ है। मुझे आशा है कि जो कुछ "नातन" ने यूरोप में किया वही भारत में भी करेगा।

मुझे जो कुछ भी कहना है वह "नातन" शीर्षक प्रबंध में कह चुका हूँ। केवल इतना कहना और बाक़ी रह गया है कि मैंने इस नाटक को मूल जरमन से अनुवाद किया है। यूरोप की भाषाओं में उसके अनुवाद हो चुके हैं। अंगरेज़ी में भी हुआ है, परंतु मुझे पूर्ण

विश्वास है कि मेरा अनुवाद अंगरेज़ी अनुवाद से अवश्य अच्छा है। अधिक स्पष्ट करने के लिए मैंने इसके अंत में टिप्पणियाँ बढ़ा दी हैं जो इसके समझने में बहुत अधिक सहायता देंगी।

कैसा अच्छा हो जो मेरे देश के लोग इससे वही लाभ उठायें जो यूरोप ने उठाया है।

बेली रोड,
इलाहाबाद,
अगस्त १९२८

मुहम्मद नईमुर्रहमान

लेसिंग की जीवनी

जर्मनी देश के सैक्सनी प्रांत के कामेंत्स नगर (Kamenz) को यह असाधारण गौरव प्राप्त है कि उसने २२ जनवरी सन् १७२६ ई० को लेसिंग सा प्रसिद्ध व्यक्ति उत्पन्न किया। उसका पूरा नाम गौटहोल्ड इफ़राइम लेसिंग (Gotthold Ephraim Lessing) है। क्लिमेन्स लेसिंग (Clemens Lessing) जिसका नाम महादेश यूरोप की धार्मिक-संसार में विशेष उत्कर्ष और गौरव रखता है, उसके पूर्वपुरुषों में से था।

लेसिंग के जन्म के समय उसका पिता योहान गौटफ़्रीड (Johann Gottfried) कामेंत्स नगर के संभ्रांत और प्रभावशाली पादरियों में से था। अपने साहस, कर्त्तव्यपालन में तत्परता और दीनदुःखियों पर अत्यंत प्रेम रखने के कारण उसने अपने नगरवासियों के हृदयों में घर कर लिया था। विटेनबर्ग (Wittenberg) के विश्वविद्यालय में उसने धार्मिक शिक्षा लाभ की, और अपने जीवन ही में एक उच्चकोटि के ग्रंथकार होने की प्रसिद्धि लाभ कर ली थी।

गौटफ़्रीड के बारह बच्चे हुए। उनमें से केवल दो ऐसे थे जो शैशवकाल से स्वस्थ और जीवित रहकर युवावस्था को प्राप्त कर सके और अन्त में अपना जीवन सार्थक कर सके। इन्हीं भाग्यवानों में एक इफ़राइम लेसिंग भी था। लेसिंग बचपन ही से अत्यंत प्रसन्न, स्वस्थ, और मृदुस्वभाव था, और तभी से उसमें पढ़ने लिखने की ओर विशेष रुचि पाई जाती थी। उसकी शिक्षा

कामेंत्स की लेटिन पाठशाला में आरम्भ हुई। बाद में सन् १७४१ में उसे माइस्सेन (Meissen) की पाठशाला सेंट आफ़रा (St. Afra) में भेजा गया क्योंकि यहां उसे निःशुल्क शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया था। इस पाठशाला में रहने के दिनों में उसने पुरातत्व और गणित में इतनी उन्नति की कि उसका नाम तमाम पाठशाला में प्रसिद्ध हो गया। छः वर्ष के बाद सन् १७४६ में वह लाइप्सीग (Leipzig) विश्वविद्यालय में धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रवेश हुआ। परन्तु इस विषय में उसका मन न लगा, और वह केवल पुरातत्व और विज्ञान के अध्ययन में मनोयोगपूर्वक लग गया। थोड़ेही दिनों में वह अपनी युवावस्था को अतिक्रम करके अपने साथियों से मित्रता बढ़ाने और एक स्वतंत्र और सभ्य सज्जन बनने की चेष्टा करने लगा। उसके विशेष मित्रों में वाइसे (Weisse) और मील्यूस (Mylius) उल्लेखयोग्य हैं जिन्होंने बाद में विद्या और विज्ञान के संसार में नाम पैदा किया। उन्हीं दिनों नाइबर (Neuber) नामक एक प्रसिद्ध और अनुभवी अभिनेत्री लाइप्सीग में रहती थी जिसका प्रभाव नगर के कुछ संभ्रांत लोगों पर भी था। लेसिंग और वाइसे उसके तमाशों में बहुधा उपस्थित रहते थे। लेसिंग ने सेंट आफ़रा ही में "विद्वान् युवक" नामक एक नाटक लिखना आरंभ किया था, उसको अब समाप्त किया। और न केवल यह कि नाइबर ने उसे अत्यंत आनंद से स्वीकार किया वरन् शीघ्रही यह जनता के प्रिय नाटकों में गिना जाने लगा।

जैसा कि सांसारिक लोगों का नियम है, लोगों ने लेसिंग की इस पद्धति को लंपटता और कुप्रवृत्ति समझा, और शीघ्रही

राई का पर्वत बनने लगे। पिता ने सुना तो घबरा कर बेटे को कामेंत्स वापस बुला लिया। घर में थोड़ेही दिनों रहने से उसके मातापिता को उसकी सच्चरित्रता का प्रमाण मिल गया, और उसे इस शर्त पर फिर लाइप्सीग जाने की अनुमति मिली कि वहाँ पहुँच कर चिकित्साशास्त्र का अध्ययन आरंभ करे। अतएव लाइप्सीग लौट आकर वह कुछ दिनों तक चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करता रहा। परंतु कैसा चिकित्साशास्त्र? उसे यह धुन थी कि मैं नाटक लिखने वालों में नाम पैदा करूँ। नतीजा यह हुआ कि जब तक नाइबर का थियेटर रहा उसका प्रायः सब समय नाटक और तमाशेही में बीतता। अंत में जब सन् १७४८ में नाटक की कंपनी के टूट जाने से लाइप्तसीग में लेसिंग के मनोरंजन का कारण भी शेष हो गया, तब वह वहाँ से विटेनवर्ग गया, और वहाँ से बरलिन पहुँचा। यहाँ उसके मित्र मील्यूस ने उसे एक समाचारपत्र के संपादन में लगा दिया। वह इस काम में तीन वर्ष तक वहाँ रहा। वहीं रह कर उसने रोलिन (Rollin) के इतिहास का अनुवाद किया, कुछ नाटक लिखे (जो उसके प्रारंभ के नाटकों में सब से अच्छे समझे जाते हैं) और मील्यूस से मिलकर एक पत्रिका का संपादन करना आरंभ किया जिसमें नाटक और उसी संबंध के और २ विषयों पर लेख होते थे। परंतु यह पत्रिका शीघ्रही बंद हो गई। सन् १७५१ में उसे फौस गेज़ेट (Voss Gazette) में समालोचक का पद मिला। इस संबंध से उसे कुछ उच्चकोटि के जरमन और फ्रान्सीसी साहित्य की पुस्तकों के देखने का अवसर मिला। इन्हीं दिनों और इन्हीं कारणों से उसे वुल्तर (Voltaire) और उसके

विचारों को जानने का भी अवसर मिला। परंतु उसका पिता इस जीवनपद्धति से प्रसन्न न था, और अभी एक वर्ष भी पूरा न हुआ था कि लेसिंग को विटेनबर्ग जाकर शिक्षा पूरी करने की आज्ञा मिली। वह वाध्य होकर वर्ष के शेष भाग में फिर विटेनबर्ग को रवाना हुआ। इस बार वह वहाँ प्रायः एक वर्ष रहा, और एम० ए० की डिगरी प्राप्त करने के बाद बरलिन वापस गया। इसके बाद के तीन वर्ष उसके जीवन का वह भाग है जिसमें उसे बिलकुल अवकाश ही न था। पहले उसने पुस्तकविक्रेताओं के लिए बहुत सी पुस्तकों के अनुवाद किये, फिर कुछ दिनों तक नाटक के संबंध में एक पत्रिका निकालता रहा, और संभवतः इन्हीं दिनों अपने जरमन और लेटिन कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित किया। इन कविताओं की उच्च कल्पना, साहित्यिक सौंदर्य और संगीत के जादू ने इस विषय के समालोचकों को मोहित कर लिया। जरमन विद्यार्थी तो उन्हीं कविताओं के कारण आज तक लेसिंग के भक्त हैं। साहित्यिक संसार में इतनी प्रसिद्धि लाभ करके वह एक बार फिर "फ़ोस गेज़ेट" में समालोचक के पद पर नियुक्त हुआ। और इस बार उसने कुछ अत्यंत प्रभावशाली लेख लिखे। इनकी संख्याओं का अनुमान इससे हो सकता है कि उसने इनमें से छूटे छूटे लेखों और कविताओं को ६ भागों में प्रकाशित किया। उस समय की विद्वन्मंडली में यह उच्चकोटि के समझे गये और इन्होंने अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। इसी संग्रह में उसके पत्रों का एक समूह भी है। जरमन साहित्य में इस ढंग और इस स्वतंत्र-स्पष्टता के साथ साहित्यिक विषय पर पहली ही बार विचार किया गया। इन

दिनों के ग्रंथों में एक और आवश्यक चीज़ उसके वह लेख हैं जिनके संग्रह का नाम "मुक्ति" (Rettungen) है, और जिनका उद्देश्य यह था कि होरेस (Horace) कवि को उसके कटु समालोचकों के इस अन्यायपूर्ण दोषारोप से बचाया जाये कि वह कामासक्त और भीरु था। इसके अतिरिक्त एक और संग्रह में ईसाई धर्म के संबंध में लेख हैं। एक मनोरंजक बात यह है कि इन्हीं में से एक ज़बरदस्त लेख में लेसिंग महात्मा मुहम्मद पर विश्वास प्रकट करता है और इसलामधर्म का पोषण करता है। इसी में तीन नये नाटक "स्वतंत्र विचार" (Der Friedenker), "यहूदी" (Die Juden) और "स्त्रियों का शत्रु" (Der Misogyn) भी थे जो उस समय के सामाजिक नाटकोंमें श्रेष्ठतम समझे गये हैं। इन नाटकों के पढ़ने से जान पड़ता है कि ग्रंथकार पर फ़्रान्सीसी समाज का रंग गहरा है। सन् १७५५ में एक और नाटक "मिस सारा सिंपसन" (Miss Sara Simpson) प्रकाशित हुआ। यद्यपि इसमें कुछ त्रुटियाँ हैं परंतु इस नाटक ने सब से बड़ा काम यह किया कि उन दिनों के जरमन ग्रंथकारों पर यह प्रमाणित कर दिया कि एक जरमन नाटक में केवल "बड़े २ आदमियों" के जीवन ही से नहीं, वरन् साधारण लोगों के जीवन से भी बड़ी २ घटनाएँ और बातें ग्रहण की जा सकती हैं। सन् १७५५ के शेष भाग में एक बार फिर बर्लिन को छोड़ कर लाइप्तसीग का रास्ता लिया, और वहाँ पहुँच कर उसने अपने मित्र मौस मेंडेल्सोन (Moss Mendelssohn) के साथ "पोप आइन मेटा फ़िज़ीकर" (Pope ein Meta-physiker) नाम एक पुस्तक लिखी जिसमें यह प्रमाणित

किया कि एक कवि और एक वैज्ञानिक में ठीक २ तुलना नहीं हो सकती ।

सन् १७५६ के शरत्काल में वह बरलिन के एक वणिक् के साथ इंगलैंड की यात्रा के लिए रवाना हुआ । परंतु सात वर्ष वाले युद्ध ने उसे ऐम्सटरडम से आगे न बढ़ने दिया । बाध्य होकर उसे लाइप्तसीग को लौट आना पड़ा । इन दिनों उसने कुछ अंगरेज़ी पुस्तकों का अनुवाद किया । कुछ दिनों के बाद परिस्थिति कुछ ऐसी बदल गई कि लेसिंग को फिर बरलिन वापस आना पड़ा ।

बरलिन की इस तीसरी बार की यात्रा में उसने अपने आलोचनात्मक "साहित्यिक पत्र" (Literaturbriefe) प्रकाशित करके साहित्य संसार में और अधिक प्रसिद्धि लाभ की । इन पत्रों की वाग्मिता, नवीनता, और उच्च विचार आज भी वैसे ही नये हैं जैसे कि उन दिनों में थे । सन् १७५९ में उसका एक जरमन नाटक "फ़िलोतस" (Philotus), कुछ और कहानियाँ और क़िस्से प्रकाशित हुए । इन्हीं के साथ २ उसने कहानियाँ, समाज, और नाटक पर अत्यंत ज़ोरदार समालोचनात्मक विचार प्रकट किये हैं । समालोचना के हिसाब से ये कहानियाँ उसके उच्चतम लेखों में गिनी जाती हैं, और नैतिक प्रभाव उत्पन्न करने में यह जरमन भाषा की समस्त नैतिक कहानियों में श्रेष्ठ हैं । सच यह है कि यह गुण केवल ग्रंथकार के ज़ोरदार शब्दों और सहज स्वभाव ने उत्पन्न किया है ।

सन् १७६० में अपने साहित्यिक कार्यों से घबराकर केवल परिवर्तन के ख़्याल से वह ब्रेसलाव (Breslau) गया, जहाँ उसे

ताउइंत्साइन (Tauenzein, प्रशिया के सेनापति और गवर्नर के सेक्रेटरी) का पद मिल गया। प्रायः पाँच वर्ष बाद, सन १७६५ में उसने इस पद को छोड़ दिया, और कामेंत्स में अपने ग़रीब मां बाप से मिल कर लाइप्सीग होता हुआ फिर बरलिन पहुँचा। सन् १७६६ में उसकी एक ज़बरदस्त किताब "लाउकून" (Laocoon) और सन् १७६७ में प्रसिद्ध नाटक "मिन्ना फ़ौन बार्नहेल्म" (Minna von Barnhelm) प्रकाशित हुए। इसी वर्ष में वह हांबूर्ग (Hamburg) पहुँचा, और अपने एक मित्र बोदे (Bode) से मिल कर उसने एक नाटक-शाला और एक मुद्रालय स्थापित किया जिनके साथ उसके भविष्य की बहुत सी आशाएँ एकत्रित थीं। परन्तु न नाटकशाला ने और न मुद्रालय ने उसकी सहायता की। दोनों ही के कारण उसके सिर पर और भी बहुत से ऋण चढ़ गये। हामबूर्ग में भी वह लिखता ही रहा। उसकी पुस्तक "नाटक के मूलतत्त्व" (Hamburgische Dramaturgie) इन्हीं दिनों की रचना है। इस पुस्तक में हामबूर्ग के थिएटर के नाटकों की समालोचना है। उसने सब से बड़ा काम यह किया कि जरमनी के नाटक लेखकों को सदा के लिए फ़्रान्सीसी-जरमन नाटकों के दासत्व की शृंखला से मुक्त करके यूनान और इंगलैंड, विशेपतः शेक्सपियर, की सच्ची अलौकिक जरमन पद्धति की ओर फेर दिया।

सन् १७७० में लेसिङ्ग ने "उलफ़ेन बुएत्तल" (Wolfenbüttel) के पुस्तकालय में अध्यक्ष का पद प्राप्त किया। और जीवन का शेष भाग इसी जगह बिताने का संकल्प कर लिया। परंतु हामबूर्ग के दिनों का ऋण, मित्रों से जुदाई, और शरीर की

निर्बलता के कारण वह दिन दिन अधिक निराशा और घबराहट में रहने लगा। अन्त में इन कष्टों से घबरा कर सन् १७७५ में चित्तविनोदनार्थ वह घर से निकला और पूरे नौ महीने तक इटली में यात्रा करता रहा। सन् १७७६ में उसने हामबुर्ग के एक सौदागर की विधवा ईवा कोइनीग (Eva König) से विवाह किया। परन्तु दोही वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई।

इन विपत्ति के दिनों में भी वह संसार को अपनी साहित्यिक रचनाओं से धनी बनाता रहा, विशेषकर धार्मिक विषय के संबंध में उसने कई ज़ोरदार लेख प्रकाशित किये। सन् १७७२ में उसका "इमीलिया गालोती" (Emilia Galotti) नामक जरमन नाटक प्रकाशित हुआ जो अपने सादेपन, तेज़ी, और ज़ोर के कारण बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त उसने उल्फ़ेन बोएत्तेल के पुस्तकालय से यथोचित लाभ उठाया, और सन् १७७३ में उसके लेखों का एक संग्रह "इतिहास और साहित्य" (Zur Geschichte und Literatur) के नाम से प्रकाशित होना आरंभ हुआ और सन् १७७८ तक जारी रहा। इसके बाद कई लेख और पत्र निकले जिनका विषय विशेषतया ईसाई धर्म की व्याख्या और समालोचना थी। सन् १७७८ और १७७९ का सब से बड़ा साहित्यिक कार्य "बुद्धिमान् नातन" (Nathan der Weise) है। इसके बाद सन् १७८० में "मनुष्य की शिक्षा (Die Erziehung des Menschengeschlechts) प्रकाशित हुई जिसका पहला भाग हामबुर्ग के संग्रह में सन् १७७७ ही में प्रकाशित हो चुका था। इस विषय के विद्वानों का विचार है कि

यह लेसिंग की अंतिम सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। संक्षेप में इस पुस्तक का सार इन मूलतत्त्वों के रूप में वर्णन किया जा सकता है— (१) प्रत्येक धर्म ने मनुष्य की आत्मिक उन्नति और विकास में समान भाग लिया है। (२) इतिहास के अध्ययन करने से जान पड़ता है कि उन्नति के कुछ विशेष नियम हैं जिनके अनुसार उसका विकास होता है और यह आवश्यक है कि संसार अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कभी कभी अधोमुख भी चला करे।

लेसिंग के अंतिम दिनों की एक और अच्छी पुस्तक "अरनस्त और फ़ालक" (Ernst und Falk) [सन् १७७७-८०] यद्यपि स्पष्टतः फ़्रीमेसन के संबंध में है, परंतु सचमुच धार्मिक अंधभाव और सकीर्णता के विरुद्ध लिखी गई है। सन् १७८० में साहित्यिक परिश्रमों के आधिक्य और नाना प्रकार की चिंताओं ने उसके स्वास्थ्य को ऐसा बिगाड़ा कि थोड़े ही दिनों में बीमार पड़कर सन् १७८१ में २२ जनवरी को ब्रून्सविक (Brunswick) में उसका देहांत हो गया।

लेसिंग मझोले डील का हृष्ट पुष्ट, देखने में रूखा परंतु वास्तव में नम्रस्वभाव का, समझदार, समालोचक, दर्शनशास्त्रवेत्ता, नाटक-लेखक, और धार्मिक विद्वान् था। वह अपनी बेबाकी, निडर-स्वभाव, निर्मल आत्मा, स्वाधीनप्रकृति और सच्चरित्रता में लूथर से कुछ कम न था। एक ऐसे समय में जब प्रत्येक लेखक ने अपना अलग २ दल बना रखा था, यह निडर होकर अपने विचार के प्रचार में लगा था। न उसे अपने विरुद्ध षड्यंत्र के होने की चिंता थी, न लोकप्रियता की धुन। उसकी सफलता का एक स्पष्ट प्रमाण यह है कि उसके जीवनकाल ही में उसके देश के नवयुवक

ग्रंथकारों और विद्वानों ने उसीका अनुसरण करना आरंभ कर दिया था। सुविख्यात जर्मन ग्रंथकार याकोबी (Jacobi) उसके विषय में कहा करता था कि "वह दार्शिनिकों का राजा है"। उसकी मृत्यु पर स्वयं गोयते (Goethe) ने यह लिखा था कि "उसकी मृत्यु से हमारी जितनी अधिक हानि हुई है हम उसका किसी प्रकार ठीक हिसाब नहीं कर सकते"। वह जरमनी के उन आनेवाले लेखकों और दार्शनिकों का अग्रगामी और उनके विचारों का सच्चा संस्थापक था जिनके दम से जरमनी ने विद्या और ऐश्वर्य में अग्रगण्य होने का पद प्राप्त कर लिया। समालोचना और गंभीर विचार उसका विशेष विषय था, और यद्यपि उसने अपने आप को किसी विशेष दर्शन के अनुयायियों में नहीं गिना तथापि जिस सौंदर्य और शक्ति से उसने समालोचना के विषय को निबाहा विद्या और विज्ञान में उसके मूलतत्व निर्धारित किये और ललितकला, काव्य, नाटक, और धर्म पर जिस ढंग से उसने विचार किया यह उसी का भाग था। यद्यपि आज उन विचारों और भावों के लोकसंमत होने के कारण वह अब नये नहीं हैं, तथापि उसके समय में वह निश्चितरूप से सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित हो चुके हैं। निष्पक्षभाव से देखा जाय तो आज भी उनकी सरसता और माधुर्य उसी प्रकार उपस्थित है जैसी उस समय में थी।

लेसिंग की लेखनशैली

लेखनशैली के विचार से लेसिंग यूरोप महादेश के श्रेष्ठ उच्चतम कोटि के लेखकों में गिना जाता है। इसकी उक्तियों की बनावट सीधी सादी और स्पष्ट, गम्भीर और दृढ़ होती है। अपने

वर्णनों में वह सरस (यद्यपि कभी कभी बेकार) अलंकारों और प्राकृतिक चित्रों के सौंदर्य से पाठकों के मस्तिष्क को अम्लान और उनके ध्यान को आकर्षित किये रखता है। छोटे छोटे चुटकुलों से लेख में सरसता और माधुर्य उत्पन्न कर देता है। बहुधा इस प्रकार जादू बांधता है कि पाठक को संदेह होने लगता है कि लेखक मूलविषय और उद्देश से भटक गया है यद्यपि कुछ मुहूर्त के बाद ही मालूम हो जाता है कि बात इससे उलटी है। इंगलैंड के प्रसिद्ध विद्वान् और समालोचक कारलाइल (Carlyle) का मत लेसिंग के संबंध में यह था कि "एक कवि, समालोचक, वैज्ञानिक, और वक्ता के रूप में लेसिंग के लेखों का ढंग अंगरेज़ों की प्रकृति और स्वभाव के अत्यंत उपयुक्त है। उसके वर्णन अननुकरणीय, मनोमुग्धकारी, और प्रसादगुणयुक्त हैं। वह बिलकुल प्रशांतभाव से बात करता है। उसकी उक्तियों में न किसी प्रकार की उत्तेजना है, न विरोध। उनमें वाक्पद्धति बड़ी निपुणता के साथ नगीनेकी तरह जड़ी होती है, बेकार बाल की खाल खींचना उनमें नहीं। उसके लेख ओजस्वी, दर्पण की तरह निर्मल, और भावपूर्ण होते हैं।" सार यह है कि लेसिंग एक मनोमुग्धकारी उत्कृष्ट भावसंपन्न और सुललित लेखक है।

जर्मन नाटक और लेसिंग

विद्या और कला की उन्नति के लिए और जितनी वस्तुएँ आवश्यक हैं उनमें सब से बड़ी शासकवर्ग और उसके प्रधान कर्मचारियों में इसका प्रचार है। उस समय तक जरमनी के राजाओं का यह हाल था कि वह जरमनी के बदले इटली के

नाटकों और तमाशों पर जान देते थे। इस लिए वह साधारण-तया उन्हीं को आश्रय देते और वहीं के नाटक खेलनेवालों को उपकृत करते। उन दिनों उस देश की शोचनीय दशा इससे बढ़ कर और क्या हो सकती है? यद्यपि उन दिनों इटली के बड़े २ अभिनेता भी एक भाँड़ या नकल करनेवाले से कुछ अधिक श्रेष्ट न थे, परंतु अपने बनाये हुए भोंडे और भद्दे तमाशों से किसी न किसी प्रकार अपने खेल देखनेवालों को खुश करने और खुश रखने में सफल हो जाते थे। इन सब में अच्छा आदमी वेल्तेन (Velthen) समझा जाता है जिसने अपने साधारण नाटकों में फ्रान्स के सुविख्यात नाटकलेखक मोलियर(Moliere) के नाटकों के कुछ अंश अत्यंत कुशलता से मिला लिये थे। संभव है यही व्यक्ति जरमनी में फ्रान्स के नाटकों के लोकप्रिय होने का कारण हुआ हो। कारण बहुत दिनों तक जरमन नाटक पर फ्रान्स का रंग विशेषरूप से चढ़ा रहा है। सत्रहवीं शताब्दी जरमनी के साहित्य में नाटक के अंग का कहीं पता तक न था। और कदा-चित् यही कारण था कि उस समय के पादरी उसे इतना निकृष्ट और बेकार समझते थे कि उन्होंने उसे निषिद्ध कर रखा था।

वेल्तेन के पश्चात् वीलांद (Wieland) और क्लोपश्तोक (Klostock) से जरमन नाटक के समय का आरंभ होता है। यद्यपि लेसिंग इन्हीं के पश्चात् हुआ परंतु इन दोनों में भी जो पुराना रंग पाया जाता है उससे वह बहुत दूर है। सच तो यह है कि गोयते से पहले के लेखकों में केवल एक यही व्यक्ति है जिसके लेख जरमन के लोग आज भी अपने विचारों के निकटवर्त्ती और अपनी आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त पाते हैं।

लेसिंग की कल्पनाओं का सब से अच्छा अनुमान उसके नाटकों मे ही होता है। इनमें उसके नाटक मिन्ना फ़ौन बर्नहेल्म (Minne von Bernhelm), इमीलिया गालोती (Emilia Galotti) और नातान दर वाइज़े (Nathan der Weise) विशेष रूप से उल्लेखयोग्य हैं। उसके नाटकों के पात्र के निर्मल और सुस्पष्ट चित्र, भावों की नियमित और स्वाभाविक शृंखला, और वाक्यों की स्पष्टता, माधुर्य, वाग्मिता, और मनोहर शृंखला ये कुछ ऐसी बातें हैं कि उनके द्वारा उसे यदि पूरे संसार के नहीं तो कम से कम जरमनी के उच्चकोटि के नाटकलेखकों की प्रथम श्रेणी में अवश्य स्थान देना उचित है। एक ओर तो उसकी कठोर परंतु उचित और विवेकपूर्ण तीव्र समालोचनाएँ, और दूसरी ओर उसके ये नाटक—इन सब ने मिलकर लोगों के मस्तिष्कों को एक उचित मूलतत्त्व की ओर फेर दिया, और नाटकलेखकों को इटली और फ़्रान्स के मानसिक दासत्व से स्वाधीन कर दिया।

नातन

लेसिंग का नाटक "बुद्धिमान नातन" जिसका अनुवाद हम "नातन" के नाम से पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहे हैं, सन् १७७९ के आरंभ में प्रकाशित हुआ था यद्यपि अपने प्रकाशित होने से बहुत पहले इसका मूलरूप ग्रंथकार के मस्तिष्क में उपस्थित था, और सन् १७७६ में वह इसके रूप और विषय पर अपने कई मित्रों से तर्क और परामर्श भी कर चुका था, परंतु कुछ बातें ऐसी उपस्थित हुईं कि यह सन् १७७९ से पहले प्रकाशित न हो सका।

इस पुस्तक के प्रकाशित होने के प्रायः दस वर्ष पहले से लेसिंग धार्मिक तर्क वितर्क में अत्यंत आग्रह के साथ भाग ले रहा था। इन शास्त्रार्थों पर उसने कई ओजस्वी पुस्तिकाएँ लिखीं जो Wolfenbüttel Fragments के नाम से प्रकाशित हुईं। ये पुस्तिकाएँ उसके उत्कृष्ट लेखों में से हैं। और पाश्चात्य देश के धार्मिक विचार और विश्वास की परंपरा में उन्होंने बहुत कुछ सहायता दी है। इन पुस्तिकाओं में उसने ईसाईधर्म के विशेष सम्प्रदायों से आरम्भ करके क्रमशः धर्म पर एक दृष्टि डाली है, और अत्यंत उदारता के साथ धर्मों में तुलना और सादृश्य दिखाकर विवेकपूर्ण प्रमाण और वचनों से अत्यंत दृढ़तापूर्वक ये बातें प्रमाणित की हैं कि—

(१) आत्मिक जीवन में अनुभव-शक्ति से अधिक काम लेना उचित है। मनुष्य को आत्मा की सत्ता का अवश्य अनुभव करना उचित है। मनुष्यों के पारस्परिक आत्मिक संबंध के भावों को इसी शक्तिद्वारा समझना उचित है। प्रत्यक्ष अवस्थाओं घटनाओं अथवा वचनों के आधार पर इसका निर्णय करना ठीक नहीं है। जब तक ऐसा न किया जायगा तब तक न तो "दिल से दिल को राह है" का अर्थ समझ में आ सकेगा, और न उसकी सत्यता का निश्चय हो सकेगा।

(२) यह संभव है कि कोई धर्म संपूर्णतया अथवा प्रत्येक युग के निमित्त सत्य और उपयोगी प्रमाणित न हो सके, परंतु यह बहुत संभव है कि वही धर्म कम से कम एक विशेष युग और नियमित समय के निमित्त किसी जाति और देश की आवश्यकताओं के निमित्त ठीक, पर्याप्त, और उपयोगी प्रमाणित हो।

अतएव यह अत्यंत भ्रांत और अनुपयोगी बात है कि उस धर्म को एकबारगी भ्रांत और बेकार समझ लिया जाय। ऐसे विचार प्रतिपादन करने से पहले जिस जाति ने उस धर्म को ग्रहण किया हो उसके देश और मातृभूमि (और विशेषकर उस धर्म की उन्नति के समय) की अवस्था का ध्यान से अध्ययन करना और अच्छी तरह समझ लेना उचित है।

(३) इसमें संदेह नहीं कि पृथ्वी के साधारण इतिहास और धार्मिक इतिहास में हमको ऐसी बहुत सी घटनाएँ मिलती हैं जिनमें एक धार्मिक कार्य के विरोध से बहुत कुछ उपद्रव हुआ है। परंतु इतिहास हो के पाठ से यह भी प्रमाणित होता है कि मनुष्य क्रमशः एक ऐसे अखिलब्रह्मांड की गति की ओर बढ़ता चला जाता है जिसमें साधारण नैतिक और मानसिक उन्नति प्रच्छन्न है और वह उसे एक दिन प्राप्त करके रहता है। इसलिए एक दूसरे का खंडन करने के बदले अच्छा यह है कि हम उस प्रगति में एक दूसरे की ऐसी सहायता करें कि वह शुभ मुहूर्त अति शीघ्र आ जाय कि जब केवल एक देश ही नहीं वरन् सारे पृथ्वी के मनुष्य एक बड़े भ्रातृमण्डल के अंग बन जाँय।

(४) सच्चरित्रता, सज्जनता, उत्कर्ष किसी विशेष जाति अथवा किसी विशेष धर्म को माननेवालों का भाग नहीं है, वरन् प्रत्येक धर्म, प्रत्येक मत, प्रत्येक विश्वास के लोगों में ये गुण उत्पन्न हो सकते हैं, और यह निश्चित है कि होते भी हैं। यह तो स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में किसी विशेष धर्म या विश्वास के लोगों को कदापि यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह दूसरे धर्म अथवा मत के लोगों को इन गुणों से च्युत समझकर उनपर अनुचित

कठोरता करें अथवा उनसे घृणा करें। वरन् प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक जाति को उचित है कि प्रत्येक दूसरे मनुष्य और प्रत्येक दूसरी जाति के विश्वास और मत के अनुयायियों के साथ सौहार्द्य बरतें और उसे वास्तविक समझने की चेष्टा करें कि जिसमें परस्पर के मनोमालिन्य दूर हो जायँ, विरोध के मूल पर कुठाराघात हो, और सब के हृदय मिलकर एक हो जायँ।

इन चारों बातों में से यह अंतिम बात "बुद्धिमान्" नातन में सब से अधिक और इतनी अधिक प्रत्यक्ष है कि बहुधा विचारशील पाठक उसके केवल इसी एक सत्य से ऐसे मुग्ध हो गये हैं कि वे सारे गुण और माधुर्य जो लेसिंग ने इस नाटक में उत्पन्न किये हैं उनकी दृष्टि से ओझल हो गये हैं, और यदि कोई प्रभाव शेष रह जाता है तो वह इसी उपरोक्त वा अन्य बातों की सत्यता के सम्बन्ध में है। इसी आधार पर मुझे विश्वास है कि मेरे देश के पाठकों पर भी यही प्रभाव पड़ेगा और उनके हृदयों में भी यही अंतिम चित्र पूर्णरूप से अंकित हो जायगा। मैंने इसी विचार, वरन् विश्वास को दृष्टि में रखकर इस अनुवाद का कष्ट उठाया है। यदि मेरी जन्मभूमि के लोगों पर इस नाटक का यह प्रभाव न पड़ा, तो मुझे दुःख होगा और मैं समझूंगा कि मेरा परिश्रम निष्फल हुआ।

मैं इसको स्वीकार करता हूँ कि कुछ लोग "बुद्धिमान् नातन" को लेसिंग जैसे ग्रंथकर्त्ता की सबसे बड़ी कृति नहीं कहेंगे परन्तु न्याय को छोड़ना उचित नहीं। मैं, और मैं क्या, प्रत्येक समझदार इसको अनुभव करेगा कि संभव है कि इसमें कुछ दोष भी हों और कदाचित् इसको रंगमंच पर लाने में कठिनाइयां

हों, तथापि इसमें कदापि अत्युक्ति नहीं है कि यह नाटक जिस उद्देश्य से लिखा गया है उसमें ग्रंथकार को अत्यंत आश्चर्य-जनक सफलता हुई है। अतएव यह कहना बिल्कुल ठीक है कि यह नाटक यूरोप की अट्ठारहवीं शताब्दी के उच्चतम सफल नाटकों में से है। केवल एक नातन यहूदी ही के व्यक्तित्व को ध्यान से देखिए कि ग्रंथकार ने किस सौंदर्य और माधुर्य के साथ इस बदनाम जाति के एक व्यक्ति की प्रकृति के उच्चतम मूल नियम का आदर्श बनाकर दिखाया है और बताया है कि मनुष्य को केवल कुछ धार्मिक प्रश्नों की शृंखला में न जकड़ जाना चाहिए वरन् एक निष्काम बे-लगाव स्वाधीन मनुष्यत्व के विशेष गुणों को अपने आप में उत्पन्न करना उचित है, क्योंकि स्वाधीनता के साथ सच्चरित्रता, निडर, सत्यता, निष्काम प्रेम ही न केवल मनुष्य को पशु से भिन्न करता है, वरन् यही गुण मनुष्यत्व के प्राण, मनुष्यत्व के सारतत्त्व हैं, और इन्हीं से मनुष्य समाज का गौरव विकसित होकर और निखरकर प्रकृति की एकता का उद्देश पूर्ण करता है। इस नाटक के प्रत्येक पात्र के भाव वर्णन किये जायँ तो बहुत विस्तार की आवश्यकता होगी। संक्षेप यह कि यदि अन्य-पात्रों को भी देखिए तो प्रतीत होगा कि ग्रंथकार की मुग्ध-कारिणी लेखनी ने इनमें क्या २ गुण उत्पन्न किये हैं। एक बार नहीं, बार २ ऐसे लेख और वचन आप को दृष्टिगोचर होते हैं जो आपके मस्तिष्क और मन पर जम जाते हैं। और आपको स्वीकार करना पड़ता है कि उनमें से प्रत्येक में एक गंभीरता और स्वाभा-विकता है। जो स्वयं सरल प्रकृति न हो वह मनुष्य स्वभाव को ठीक २ नहीं समझ सकता, और जो उसको न समझे वह अच्छा

नाटक नहीं लिख सकता, और जो वास्तविक मनोहर लेखक न हो उससे यह मनोहर वाक्य नहीं निकल सकता। किसी साधारण लेखक के वश का तो यह रोग कदापि नहीं है।

यह भी ठीक है कि जो ख्याति और लोकप्रियता इस नाटक को बाद में प्राप्त हुई वह इसके प्रकाशित होने और रंगमंच पर लाये जाने के समय नहीं हुई। इसके दो कारण बताये जाते हैं। एक कारण यह था कि इसके प्रकाशित होने से पहले लेसिंग विशेषरूप से ईसाईधर्म की संकीर्ण दृष्टि के विरुद्ध और साधारणतया धार्मिक सहृदयता की पृष्ठपोषकता में कई ओजस्वी लेख लिख चुका था, जिसके कारण उस समय के बहुत से ईसाई विद्वान् (और उनके प्रभाव से जनसाधारण) उसके विरुद्ध हो गये थे। लेसिंग के गुणदोषनिरूपण से लोगों को उससे घृणा हो गई था, और वे उससे डरते भी थे। परंतु यह वीर, जिसके विषय में कहा जाता है कि स्वयं लूथर भी निर्भीकता और स्वाधीनता के भावों में इसके सामने कुछ न था, उसी प्रकार अपने विचारों पर दृढ रहा और बिलकुल निडर होकर उसकी घोषणा करता रहा। स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में जिस रंगमंच पर "बुद्धिमान् नातन" जैसी धार्मिक सहृदयता का पाठ दिया जा रहा हो आरंभ में उसकी ओर दृष्टि करने का किसको साहस हो सकता था? दूसरा कारण यह था कि आरंभ में जो अभिनेता इस नाटक को करते और दिखाते थे वह इसके तत्त्वज्ञान और उसके अर्थ और उद्देश को नहीं समझते थे। इसलिए वे अपने अभिनय द्वारा लोगों पर वह प्रभाव नहीं डाल सके जो वास्तव में उसका उद्देश था। उसका परिणाम यह हुआ

कि पूरा तमाशा लोगों को नीरस और निरर्थक प्रतीत होता था और वह शीघ्र ही घबरा जाते थे। परंतु सूर्य का प्रकाश कदापि छिपा नहीं करता। कुछ दिनों बाद जब उसके ठीक विचार लोगों को हृदयंगम होने लगे और ऐक्टर भी ऐसे होने लगे जो वास्तविक इस कला में कुशल थे और जिनको एक गति प्रकृति का दर्पण होती थी, तो "नातन" के गुण खुले, और उसे ऐसी लोकप्रियता, ऐसी सुविख्याति प्राप्त हुई कि उस समय से आज तक जरमनजाति उस पर मुग्ध है।

लेसिंग के लिखने का ढंग बहुत सीधा सादा है। "नातन" में तो उसने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह बिल्कुल ही सुबोध और सीधी सादी है। आद्योपांत अत्यंत सादी भाषा में अपने भाव प्रकट किये हैं। बड़े २ शब्द और दिखावा बिल्कुल नहीं है। यही कारण है कि इसने सब के हृदयों को समानभाव से मुग्ध कर लिया। मैंने यह चेष्टा की है कि लेसिंग के भाषा के गुण अनुवाद में प्रत्यक्ष रहें, यद्यपि उसका सा प्रभाव डालना मेरे वश का नहीं। इतना अवश्य है कि यदि वेष के बदल जाने से हृदय और मस्तिष्क नहीं बदलते तो भाषा के बदलने से प्रभाव क्यों बदले? लेसिंग के भाव प्रत्येक अवस्था में वर्तमान रहेंगे। जिस व्यक्ति के लेख ने एक बार सारे यूरोप का कायापलट कर दिया, उसका तेज और उसका प्रभाव ज्यों का त्यों बाक़ी है। यदि यूरोप में ऐसे हृदय थे जिन्होंने इसके गुणों को ग्रहण किया, तो मेरी जन्मभूमि में भी अंतर्दृष्टिसंपन्न लोगों का अभाव नहीं। वहाँ यदि अंधकारमय युग का प्रभाव था, तो यहाँ भी थोड़े दिनों से हृदयों पर एक आवरण पड़ गया है। सौभाग्य की बात

है कि यह संवरण पतली है। वहाँ यदि एक अकेले लेसिंग के तेज के प्रकाश से अंधकार दूर हो गया, और गोइते, शिलर (Schiller) और कांत (Kant) जैसे जरमनी के रत्नों के लिए रास्ता खुल गया, तो क्या मेरी जन्मभूमि के स्वनामधन्य ऋषियों और मुनियों के तेज के साथ लेसिंग का तेज मिलकर मेरे देश के सच्चे सुपूतों को उस उच्चस्थान तक न पहुँचा देगा जहाँ से बैठकर उन्होंने देख लिया था कि मानवप्रकृति में निकृष्टतम वस्तु हठ और धर्मद्रोहिता है ? उसी उच्चस्थान पर तो बैठकर उन्होंने बचन दिया था कि वह भारतवर्ष को मनुष्यत्व के गुणों से शोभायमान करेंगे। घटाएँ छँट रही हैं, प्रकाश दिखाई दे रहा है, वह समय दूर नहीं है कि लेसिंग की जैसी संजीवनी शक्ति से प्रभावित होकर सूर्य अपने पूर्णप्रकाश के साथ चमकने लगे।

"नातन" के पात्र ।

सुलतान सलाहुद्दीन अय्यूबी

शाहज़ादी सित्ता—सुलतान की बहन ।

नातन—जेरूसलम का एक धनी यहूदी ।

रीशा—नातन की लड़की जिसको उसने गोद लिया था ।

दाया—एक ईसाई स्त्री जो नातन के घर में रहती है और रीशा की संरक्षक है ।

एक युवक नाइट टेंपलर ।

हाफ़ी—एक मुसलमान दरवेश ।

जेरूसलम का मठाध्यक्ष ।

जेरूसलम के एक मठ का संन्यासी ।

सुलतान सलाहुद्दीन का एक गवर्नर ।

सुलतान के सेवक ।

स्थान—जेरूसलम ।

नातन

पहला अंक

पहला दृश्य

नातन के मकान का दीवानख़ाना। नातन अभी सफ़र से वापस आया है। दाया उससे मिलती है।

दाया—अहा! यह तो वह है! अरे! यह तो नातन है! (नातन से) परमात्मा की बड़ी कृपा हुई कि उसने आख़िर तुम्हें हम तक पहुँचा ही दिया!

नातन—हाँ दाया, सच है परमात्मा की बड़ी कृपा हुई। पर तुमने 'आख़िर' क्यों कहा? क्या तुम कहना चाहती हो कि मैं इससे पहले आना चाहता था या आ सकता था? यह समझो कि जिस रास्ते से मुझे दायें बायें फेर खाकर आना पड़ा है उस हिसाब से बाबल जेरूसलम से पूरे २०० मील होगा। और क़र्ज़ का वसूल

करना कुछ खेल तो है नहीं कि कोई सौदागर जल्दी जल्दी यह काम कर ले; यह कोई हथेली पर सरसों जमाना थोड़े ही है ?

दाया—ओह, नातन ! तुम यहाँ होते तो तुमपर न जाने क्या बीतती ! तुम्हारे घर में—

नातन—आग लग गई—न ? यह तो मैं सुन चुका हूँ। परमात्मा की इच्छा ! यह अशुभ समाचार तो मैं पहले ही सुन चुका हूँ।

दाया—आह ! वह तो सारे का सारा जलकर राख हो जाता !

नातन—अच्छा, दाया। तो हम एक और नया घर बना लेते—इस से भी अच्छा बनाते। क्यों ?

दाया—हाँ, ठीक है। बड़ा अच्छा हुआ कि हमारी रीशा बच गई—बाल बाल बच गई, नहीं तो राख का ढेर ही हो गई होती।

नातन—राख का ढेर ?—कौन ? मेरी रीशा ? हाय ! यह बात तो मैंने नहीं सुनी। ईश्वर न करे, यदि ऐसा होता तो भला मुझे घर ही लेकर क्या करना था ?—बाल बाल बच गई ! नहीं, दाया, देखो ! सच सच

बताओ। नहीं वह ज़रूर जल गई है। लो अब कह भी डालो। चाहे मुझे मार ही डालो पर, ईश्वर के लिये, मुझे तड़पाओ मत। हाय! वह ज़रूर जलकर राख हो चुकी है।

दाया—और जो ऐसा होता भी तो क्या यह बात तुम बस मेरे ही मुंह से सुनते?

नातन—फिर तुम क्यों मुझे दुःख पर दुःख दे रही हो? हाय रीशा! मेरी रीशा!

दाया—तुम्हारी? ख़ास तुम्हारी रीशा?

नातन—हाँ, हाँ! ईश्वर न करे ऐसा हो कि मैं उसे अपना बच्चा न कहूँ!

दाया—पर तुमने अपनी किसी और चीज़ को भी इसी ज़ोर के साथ अपना कहा है?

नातन—हाँ, सच तो है। पर किसी और चीज़ पर मेरा इतना अधिकार भी तो नहीं है। जो कुछ भी मेरे पास है, वह या तो परमात्मा का दिया हुआ है या भाग्य से मिल गया है। मगर मुझे अपने पुण्यों के बदले में तो केवल एक वही रीशा पुरस्कार में मिली है।

दाया—नातन, तुम अपने अनुग्रहों का मुझसे कितना मूल्य दिलवा रहे हो! जो वे सब अनुग्रह इसी उद्देश

से थे, तो मालूम नहीं उन्हें अनुग्रह कहना भी उचित है या नहीं।

नातन—"इसी" उद्देश से? वह क्या उद्देश है?

दाया—मेरी अंतरात्मा—

नातन—दाया, पहले ज़रा तुम मुझसे यह तो सुन लो कि—

दाया—मैं कहती हूँ कि मेरी अंतरात्मा—

नातन—अच्छा। मुझसे ज़रा यह तो सुन लो कि मैं बाबुल से तुम्हारे लिए कैसी अच्छी चीज़ें लाया हूँ। देखो तो, कैसी कैसी अच्छी और अनोखी चीज़ें हैं। मैं सच कहता हूँ कि रीशा के लिए भी मैं ऐसी अच्छी चीज़ें नहीं लाया।

दाया—नातन, अब इससे क्या लाभ? अब मेरी अंतरात्मा चुप नहीं रह सकती।

नातन—मैं तो यह देखने के लिऐ बेचैन हूँ कि तुम यह हँसली और छल्ला और बाली और माला पसंद करती हो या नहीं। यह सब चीज़ें मैंने रास्ते में दमश्क से तुम्हारे लिए ख़रीदी थीं।

दाया—हाँ, यह तो तुम्हारी आदत ही है कि मुझ निगोड़ी के ऊपर तुम उपहार पर उपहार लादते रहते हो।

नातन—मैं तुम्हें दिये जाता हूँ। तुम लिये जाओ। बोलो मत।

दाया—क्या? क्या कहा? बोलो मत?—नातन, भला तुम्हें कौन नहीं जानता कि तुम उदारता और धर्म की मूर्त्ति हो? फिर भी—

नातन—हो तो यहूदी।—तुम यही कहना चाहती थीं न

दाया—मैं जो कहना चाहती हूँ वह तुम ख़ुद ही अच्छी तरह जानते हो—

नातन—अच्छा, बस। अब इस कहानी को छोड़ो।

दाया—अच्छा, तुम यहाँ जो कुछ करते हो वह परमात्मा की दृष्टि में अवश्य दंडनीय है। मैं न उसे बदल सकती हूँ न रोक सकती हूँ। परमात्मा इसका शाप तुम्हीं पर डाले!

नातन—मुझ ही पर शाप पड़े! अच्छा, यह तो बताओ वह है कहाँ? वह कहाँ गई? दाया, तुमने कहीं मुझे धोखा तो नहीं दिया? अच्छा, उसे ख़बर भी हो गई है कि मैं आ गया हूँ?

दाया—क्या पूछते हो? उसका तो अब तक डर के मारे जोड़ जोड़ काँप रहा है। उसके मस्तिष्क का यह

हाल है कि उसे हर चीज़ में आग ही आग दिखाई देती है। उसकी आत्मा नींद में जागती है, और जागते में सोती है। क्या कहूँ! कभी तो पशु से बुरी मालूम होती है और कभी देवताओं से बढ़कर।

नातन—हाय रे मेरी बच्ची! मनुष्य भी क्या वस्तु है!

दाया—आज सुबह वह बड़ी देर तक इस तरह आँखें मीचे पड़ी रही जैसे, ईश्वर न करे, कोई मुर्दा पड़ा हो। फिर एक दम से चौंक कर कहने लगी "वह देखो! पिताजी के काफ़ले के ऊँट चले आ रहे हैं। सुनो, पिता जी की प्यारी प्यारी आवाज़ धीरे धीरे सुनाई पड़ रही है।" इतने में फिर उसकी आँखें पथरा गईं, हाथ सिर के नीचे से निकल गया, और सिर धम से तकिये पर गिर पड़ा। उफ़! बस मैं जल्दी से दरवाज़े की तरफ़ लपकी, देखा तो सचमुच चले आ रहे हो। ईश्वर की लीला भी विचित्र है! इतनी देर तक उसकी जान बराबर तुम में और उसमें ही पड़ी रही।

नातन—उसमें—किसमें?

दाया—उसी में न, जिसने उसे आग में से निकाला था।

नातन—कौन ? कौन था वह ? वह कहाँ है जिसने मेरी रीशा की जान बचाई है ? वह है कहाँ, दाया ?

दाया—कोई नव-युवक टेंपलर था। कुछ दिन हुए वह यहाँ क़ैद होकर आया था। सलाहुद्दीन ने उसे तरस खाकर छोड़ दिया था।

नातन—क्या कहा ? टेंपलर ? और वह भी ऐसा कि सलाहुद्दीन ने उसको जीवन दान दिया था ? क्या रीशा के बचाने के लिए इतने बड़े अलौकिक कांड की आवश्यकता पड़ी ? हे भगवन् !

दाया—वह तो कहो वह बेचारा इस तरह दूसरा जीवन पाकर भी ऐसे साहस से जान दिये दे रहा था, नहीं तो रीशा मर ही चुकी थी।

नातन—दाया, बताओ तो वह है कहाँ ? वह तो कोई बड़ा वीर और सज्जन व्यक्ति मालूम होता है। वह है कौन ? बस, तुम मुझे उसके चरणों तक पहुँचा दो। तुमने उसे उसी समय वह सारा माल असबाब दे दिया होगा जो मैं यहाँ तुम्हारे पास छोड़ गया था ? सब कुछ दे दिया है न ? बल्कि यह कहो कि और भी बहुत कुछ देने की प्रतिज्ञा की है—क्यों ?

दाया—भला, हम यह कैसे कर सकते थे ?

नातन—तो तुमने ऐसा नहीं किया ?

दाया—लो, अब क्या मालूम वह कहाँ से आया था ? न जाने कहाँ गया, कहाँ न गया ? उसे भला हमारे घर की क्या ख़बर थी। वह तो केवल आवाज़ ही सुनकर एक दम से भागा हुआ आया और देखा—बस अपने चुग़े में लिपट लिपटा कर धुएँ और आग को चीरता फाड़ता वहीं पहुँचा जहाँ रीशा चीत्कार करके लोगों को पुकार रही थी। हम तो समझे थे कि इस भलेमानस का भी अन्त हो गया, पर वाह रे वीर ! थोड़ी ही देर में वह आग की लपटों से निकला और हमारी प्यारी बच्ची को अपने शक्तिशाली बाँहों में उठाए हमारे सामने आ खड़ा हुआ। परमात्मा की लीला ! बड़ा रूखा सूखा सा आदमी था। हम हर्ष से चिल्लाते और उसको धन्यवाद देते ही रहे पर उसने ज़रा भी तो परवा न की। बस, रीशा को लिटा—यह जा, वह जा, कहीं अन्तर्धान हो गया, और हम खड़े देखते के देखते ही रह गये।

नातन—परमात्मा की बड़ी कृपा हो, जो वह सदा के लिए न चला गया हो !

दाया—वह सामने हमारे नबी की क़ब्र के ऊपर कुछ खजूर के पेड़ छाया किये खड़े हैं न ? अच्छा, तो पहले कुछ दिनों वह इन पेड़ों में आना जाता दिखाई देता था। मैं बेबस उसके पास जाती थी जैसे किसी ने मुझपर जादू कर दिया हो। उसकी बलाएं लेती थी, उसकी बहादुरी को सराहती थी और तरह तरह से अनुनय विनय करती कि, ईश्वर के लिये, अधिक नहीं तो एक ही बार ज़रा उस निरीह बच्ची का मुंह तो देख लो। जब तक वह तुम्हारे चरणों में गिर कर और आँसू बहा कर अपने हृदय की ज्वाला शान्त न कर लेगी उसे चैन न पड़ेगा।

नातन—हाँ, फिर ?

दाया—फिर क्या ? सारा परिश्रम व्यर्थ गया। उसने एक न सुनी, उल्टा मुझ ही को बनाने लगा कि—

नातन—कि तुम डर के भागीं। एं ?

दाया—एं नहीं। भला ऐसा भी क्या था ! मैं उससे प्रति दिन मिलती थी और नित्य नये ताने सुनती थी। भला मैंने उसकी कौन सी बात न सही, और ऐसी कौन बात थी जो मैं हँसी ख़ुशी न सहती ! पर अब तो वह उन खजूर के पेड़ों की ओर भी घूमने नहीं आता।

किसी को मालूम नहीं कि वह कहाँ जा छिपा है।—यह तुम चौंके क्यों ? तुम तो जैसे कुछ सोचने लगे। ऐं ?

नातन—कुछ नहीं। मैं यह सोच रहा हूँ कि इस घटना ने रीशा जैसी बच्ची के दिल पर क्या कुछ प्रभाव न डाला होगा—कि एक व्यक्ति जिसका वह आदर करने को बाध्य है, उससे ऐसी उदासीनता का व्यवहार है। उधर यह उदासीनता और इधर हृदय उस ओर खिंचा जाता है। परमेश्वर ही जाने, उसके हृदय और मस्तिष्क में क्या उद्वेग हो रहा होगा, और कुछ भी समझ में न आता होगा कि कौन सा भाव विजय लाभ करता है—क्रोध और घृणा, अथवा दुःख और करुणा ! बहुधा ऐसा होता है कि दोनों में से कोई भी विजय प्राप्त नहीं कर पाता और कल्पना इस युद्ध में योगदान करके मनुष्य को एक स्वप्न की सी अवस्था में कर देती है। कभी उसका हृदय मस्तिष्क का रूप धारण करता है और कभी मस्तिष्क हृदय का—उफ़ ! क्या मुसीबत है ! यदि मैंने अपनी रीशा के स्वभाव को ग़लत नहीं समझा है तो निःसन्देह उसकी भी यही अवस्था होगी। वह भी कुछ ऐसे ही स्वप्न की सी अवस्था में होगी।

दाया—ऐ ! वह तो बड़ी भोली भाली और प्यारी लड़की है।

नातन अच्छा, कैसी ही हो। अब तो वह दिल के हाथों पागल है।

दाया—अब तुम उसे जो चाहो कहो। उसके दिल में तो यह बात बैठ गई है कि वह टेंपलर न मनुष्य था, न इस पृथ्वी का रहने वाला, बल्कि कोई फ़रिश्ता था। यह तो तुम जानते ही हो कि बचपन ही से उसके नन्हे से दिल में यह बात जमी हुई है कि एक फ़रिश्ता सब समय उसकी चौक-सी करता है। वह समझती है कि यह फ़रिश्ता बादलों में छिपा हुआ आग में उसके आस पास मंडरा रहा था, और एक दम से टेंपलर बन कर उसके सामने आ खड़ा हुआ।—मुसकुराओ मत। क्या मालूम ऐसा ही हो।—अच्छा, तुम चाहे हँस लो, पर उसे तो इस आनंदमयी कल्पना का स्वाद लेने दो। आखिर यह कुछ बुरी बात तो है नहीं। ईसाई, मुसलमान, यहूदी सब ही ऐसा समझते हैं।

नातन—हाँ, मुझे भी यह कल्पना बहुत प्यारी है। अच्छा, दाया, खुश रहो। तुम ज़रा जाकर देखो तो सही,

वह क्या कर रही है। मैं उससे बातें करना चाहता हूँ। फिर मैं उसके दीवाने, मन मौजी रक्षक फ़रिश्ते को कहीं न कहीं से ढूंढ़ निका-लूंगा। यदि वह अब तक इस पृथ्वी पर है और अपनी मर्यादा का ख़याल न करके 'नाइट' बना फिरता है, तो तुम निश्चय जानो मैं उसे अवश्य ढूंढ ही के छोड़ूंगा, और यहाँ ले आऊँगा।

दाया—तुम बहुत बड़े काम का बीड़ा उठा रहे हो।

नातन—फिर तो इस आनंदमयी कल्पना की सत्ता दिखाई देगी, जो इससे भी ज्यादा आनंदमयी होगी। और दाया, निश्चय जानो कि मनुष्य के हृदय को मनुष्य फ़रिश्ते से भी ज्यादा भाता है। हाँ, तो यदि इस तरह तुम यह देख लो कि वह फ़रिश्ते की मतवाली अच्छी हो गई है तब तो तुम मुझे दोष नहीं दोगी, मुझ से क्रोध तो नहीं करोगी ?

दाया—तुम बड़े अच्छे आदमी हो, पर नटखट भी वैसे ही हो। अच्छा मैं जाती हूँ। मगर वह देखो तो—वह ख़ुद ही आ रही है।

[रीशा आती है]

दूसरा दृश्य ।

रीशा और वही पहले दृश्य के पात्र ।

रीशा—अहा ! पिताजी ! यह तो सचमुच तुम ही हो ! मैं तो समझी थी तुमने केवल अपने शब्द ही को अपने आने का संबाद देने के लिए आगे आगे भेज दिया है । अब तुम कहाँ हो ? क्या अब भी पहाड़ियों, जंगलों, और नदियों ने हमें और तुम्हें अलग कर रखा है ? पिताजी, अब तो हम तुम सब एक ही घर में बैठे हुए हैं । फिर भी तुम जल्दी से अपनी बेटी को गले नहीं लगाते । तुम्हारी मुन्नी सी रीशा तो जलने से बाल बाल बची । बस, जलनेवाली ही थी । नहीं, नहीं, पिताजी ! डरो मत, जलने वाली थी, जली तो नहीं । हाय ! कैसी बुरी मृत्यु है, आग में जलना ! आह !

नातन—बेटी, मेरी प्यारी बेटी !

रीशा—तुम तो फ़रात, दजला, उरदन, और न जाने कौन कौन सी नदियाँ पार करके आये होगे । ऐ है ! अभी

जो मैं जल कर मरती मरती बची हूँ, उससे पहले मेरे हृदय में तुम्हारे सम्बन्ध में नाना प्रकार के भाव उठते थे। मैं काँप काँप उठती थी। पिताजी, परन्तु सच कहती हूँ, जल कर मरने से पानी में डूब कर मरना मुझे अच्छा लगने लगा है। उसमें ठंडक सी तो होगी। मनुष्य प्रसन्नचित हलका फुलका सा लगता होगा। क्यों? फिर भी—देखो, न तुम डूबे, न मैं जली। अब हम आनंद से रहेंगे, और परमात्मा की आराधना किया करेंगे। मैं तो यही कहूँगी कि परमात्मा ने अदृश्य फ़रिश्तों ही को भेजा होगा जिन्होंने तुम्हें और तुम्हारे उस जहाज़ को अपने परों पर लेकर पार उतार दिया। उसी परमात्मा ने मेरे फ़रिश्ते को आज्ञा दी होगी कि मनुष्य के रूप में आकर, सुफ़ैद सुफ़ैद बगले के से परों पर उठा कर मुझे आनंद से आग से बाहर निकाल लाये—

नातन—[दिल में] सुफैद २ बगले के से पर!—हाँ, ठीक तो है। इसका मतलब असल में टेंपलर के सुफैद कपड़ों से है।

रीशा—वह सब के सामने अपने परों पर उठाकर मुझे जलती आग से निकाल लाये। पिता जी, मैंने फ़रिश्ते

को अपनी आँख से देखा है—और वह वही मेरा रक्षक फ़रिश्ता है।

नातन—हाँ, इसमें क्या संदेह। रीशा ऐसी ही है कि फ़रिश्ता उसकी सेवा में आये, और जैसे रीशा ने उसे पसंद किया है वैसे ही उसे भी रीशा पसंद आई होगी।

रीशा—[कुछ मुसकुराते हुए] पिताजी, पिताजी ! यह तुम किसके गुण बता रहे हो ? फ़रिश्ते के या अपने ?

नातन—बेटी, तुम चाहे कुछ कहो, सच तो यह है कि यदि वह ऐसे ही कोई साधारण मनुष्य होता जैसे हम प्रतिदिन देखा करते हैं, तब भी वह तुम्हारी ऐसी ही सेवा करता, और तुम्हें वह फ़रिश्ता ही दिखाई पड़ता—और सचमुच उसे फ़रिश्ता कहना भी चाहिए।

रीशा—साधारण मनुष्य नहीं, पिताजी—फ़रिश्ता। सचमुच का फ़रिश्ता था, पिताजी।—और तुमने आप ही तो मुझे यह सिखाया है कि फ़रिश्ते भी हुआ करते हैं, और जो लोग हमारे परमपिता के भक्त हैं उनके निमित्त वह फ़रिश्तों से बड़े बड़े अनोखे काम लेता है। मैं भी तो आखिर उसी परमपिता से प्रेम करती हूँ।

नातन—हाँ, और परमात्मा भी तुमसे प्रेम करता है। वह सब समय तुम्हारे और तुम जैसे बच्चों के लिए नाना प्रकार के अलौकिक कांड दिखाया करता है और अनंत काल ही से दिखाता आ रहा है।

रोशा—यह बातें मुझे बहुत अच्छी लगती हैं।

नातन—अच्छा, समझ लो तुम्हें किसी टेंपलर ही ने बचाया। फिर चाहे यह बात कैसी ही साधारण हो और प्रतिदिन होती भी हो, परन्तु हम तो तुमसे यह पूछते हैं कि एक टेंपलर का तुम्हें इस प्रकार आकर बचा लेना भी क्या कुछ कम अलौकिक कांड है। मैं तो कहता हूँ कि सब से बड़ा अलौकिक कांड यही है। सच तो यह है कि हम प्रतिदिन बहुत से असली और सच्चे अलौकिक कांड देखते २ उन्हें साधारण बात समझने लगते हैं। यदि यह प्रतिदिन के अलौकिक कांड न होते, तो अलौकिक कांड का नाम किसी बुद्धिमान के मुंह से न निकलता, वरन् केवल बच्चों के मुँह से सुनाई देता जो असाधारण और अनोखी चीज़ों को मुँह फैलाये तका करते हैं।

दाया—[नातन से] ज़रा सोचो तो सही। तो क्या अब तुम्हारी यह इच्छा है कि तुम ऐसी एंच-पेंच की

बातें करके इस बेचारी के व्याकुल मस्तिष्क को और भी व्याकुल कर दो।

नातन—सुनो तो—अच्छा, यह बताओ कि मेरी रीशा के लिए भला यह कुछ कम अलौकिक बात है कि उसे एक ऐसे व्यक्ति ने बचाया है जो उससे पहले खुद भी अलौकिक कारणों से छूटकर आया था। और फिर अलौकिक बात भी कैसी! ज़रा यही सोचो कि इससे पहले भी सलाहुद्दीन ने कभी किसी टेंपलर को जीवन दान दिया था? या किसी टेंपलर ने उससे कृपा की प्रार्थना या आशा की है? या अपने प्राण बचाने के लिए कभी अपनी तलवार के परतले या बरछे से ज़्यादा कोई चीज़ पेश की है?

रीशा—पिताजी, यह तो वही बात हो गई जो मैं कह रही हूँ। भला, इससे क्या यह नहीं मालूम होता कि असल में वह टपलर-वेंपलर कुछ नहीं था। केवल उसका स्वरूप धारण किये था। समझने की बात है कि जब कोई क़ैदी टेंपलर अपनी जान के डर से जेरूसलम के पास भी नहीं फटक सकता, जब परमेश्वर के किसी जीव में इतनी क्षमता नहीं कि यहाँ बेखटके स्वतंत्र घूमा करे—तो फिर

यह कैसे हुआ कि एक टेंपलर उस रात योंही फिरता फिराता आ गया और मेरी जान बचा गया ?

नातन—भाई! क्या बात मस्तिष्क से उतारी है! लो, अब बोलो। दाया, अब क्या कहती हो? तुमने ही तो मुझे बताया था कि वह यहाँ गिरफ़ार होकर आया था। मुझे विश्वास है कि तुम्हें उसका कुछ और हाल भी मालूम है।

दाया—हाँ, लोग कहते तो ऐसा ही हैं। वरन् यह भी कहते है कि सुलतान ने बस एक इसी टेंपलर की जान-बख़शी थी, और वह भी इस लिए कि सुलतान का कोई बड़ा प्यारा भाई था और इस टेंपलर का रूप उससे बहुत मिलता था। इतनी बात तो अवश्य है कि सुलतान के उस भाई को मरे हुए कोई २० वर्ष हो चुके हैं। न तो हमें उसके नाम की ख़बर है, न यह मालूम कि वह किस मैदान में मरा। इस लिए मुझे इस सारे क़िस्से पर विश्वास नहीं होता। सब मनगढ़ंत सी कहानी मालूम होती है।

नातन—क्यों, दाया, इसके विश्वास न करने की क्या बात है? आख़िर तुम और लोगों की तरह इस सीधी-

सादी सी बात को झूठ ठहराकर कोई ऐसी बात समझ लेने से रहीं जिसका और भी विश्वास न हो।—सलाहुद्दीन को अपने कुटुम्बियों से बहुत प्रेम है। तो फिर यह कौन से आश्चर्य की बात है कि उसे अपनी युवावस्था में अपने किसी भाई से विशेष प्रेम रहा हो? संसार में क्या दो आदमियों की सूरतें नहीं मिला करतीं? क्या बहुत समय बीत जाने से मनुष्य किसी को भूल भी जाता है? और यह कब से होने लगा कि किसी कारण का कोई परिणाम ही उत्पन्न न हो? आखिर, इसमें किस बात का तुम्हें विश्वास नहीं होता? दाया, तुम तो बड़ी बुद्धिमती हो, तुम्हारे लिए तो इसमें कोई भी अनोखी बात नहीं हो सकती। और तुमने जो अलौकिक बात बताई है, इसमें बस इतनी सी कमी है कि उसे बुद्धि नहीं मानती।

दाया—तुम तो फिर हँसी करने लगे!

नातन—हाँ, इस लिए कि तुम भी तो मुझको हँसी में उड़ा रही हो।—अच्छा, भाई, जो कुछ हो पर रीशा! तुम्हारा बच निकलना पहेली ही है। यह परमात्मा का काम है जो बादशाहों के बड़े से बड़े जोड़-तोड़ और उनके हद से हद संकल्पों को एक कच्चे सूत से अपने वश में

किये हुए हैं। यह परमेश्वर की हँसी—नहीं, उसकी शक्ति की लीला है।

रीशा—अच्छा, पिताजी, मेरा ही भ्रम सही। पर तुम्हें खूब मालूम है कि मैं जानबूझ कर भ्रम में नहीं पड़ती।

नातन—हाँ, मुझे खूब मालूम है। वरन् तुम तो सदा यही चाहती हो कि ठीक बात मालूम हो। देखो, कुछ मिहराब की तरह ललाट, एक विशेष काट की नाक, पतली लकीर सी भँवें, और उनके नीचे उभरी हुई जरा चपटी सी हड्डी, एक लकीर, एक झुकाव, एक खत्त, एक जरा सा गढ़ा, एक तिल—एक ओर तो यूरोप के एक जंगली के चेहरे में इन सब बातों का जमा होना, और दूसरी ओर एशिया में तुम्हारा आग से इस तरह बचना! जो लोग आश्चर्यजनक बातों की खोज में हैं, मैं उनसे यह पूछता हूँ कि यही बात क्या कम आश्चर्य की है? फिर इसकी क्या आवश्यकता है कि बिना कारण किसी फ़रिश्ते ही को खींच कर इसमें लाया जाये।

दाया—अच्छा, नातन, जो तुम मुझे बोलने दो तो मैं यह पूछूँ कि जो कुछ तुम कहते हो वही सच सही। पर

यही सच समझ लेने में कौन सा दोष है कि उसे फ़रिश्ते ही ने बचाया है, किसी साधारण मनुष्य ने नहीं बचाया ?—वरन् ऐसा समझने में यह भलाई है कि हमें यह मालूम होने लगता है कि हम अपने उस संरक्षक के अधिक निकट हो गये हैं जिसकी थाह को पहुँचना कठिन है।

नातन—यह गर्व है, केवल गर्व, और कुछ नहीं। यह तो ऐसा ही है कि जैसे लोहे की हंडिया चाँदी की बनना चाहे तो वह यह कहे कि मुझे चूल्हे पर से चाँदी के चिम्टे से उठाओ। तुम पूछती हो इसमें क्या दोष है, और मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि ऐसा समझने में भलाई क्या है ? तुम्हारा यह समझना कि तुम ऐसा समझ कर परमेश्वर से और ज्यादा निकट हो जाओगी, या तो ना समझी है या असम्मान !—और सच पूछो तो इससे हानि ही होती है। अच्छा, जो कुछ मैं कहता हूँ उसे कान दे कर सुनो और सच्ची सच्ची बात कहो।—जिस व्यक्ति ने उसके प्राण बचाये हैं, अब चाहे वह कोई हो, मेरा विचार है कि तुम और तुमसे अधिक रीशा यह चाहती होगी कि इस व्यक्ति की कुछ सेवा की जाये। यदि वह फ़रिश्ता ही है, तो यह बताओ कि उसकी

क्या सेवा कर सकती हो ?—कदाचित् उसको धन्यवाद दोगी, या उससे सामने ठंडी २ साँसें लोगी, और प्रार्थना करोगी ? या उसका ख्याल ही कर करके बड़ी श्रद्धा के साथ अपने आपको घुला डालोगी; नहीं तो उसके त्योहार के दिन उपवास करोगी और उसके नाम से दान-पुण्य करोगी।—इस सब का फल व्यर्थ ! मेरा तो विचार यह है कि तुम्हारे पुण्यकार्य से स्वयं तुम्हारा और तुम्हारे पड़ोसियों का जितना उपकार होता है उतना उसका कदापि नहीं होता। तुम्हारा फ़रिश्ता न तो तुम्हारे उपवास से मोटा होता है, न तुम्हारे दान-पुण्यों से धनवान्; न तुम्हारी श्रद्धा के आग्रह और उद्गार से उसका कुछ मान बढ़ता है, और न तुम्हारे विश्वास से वह अधिक दृढ़ होता है।—क्यों ? है या नहीं ? और यदि वह मनुष्य है, तो कैसा आकाशपाताल का अन्तर हो जाता है।

दाया—हाँ ! मैं मानती हूँ, यदि वह मानवजाति का होता तो हमें धन्यवाद प्रदान करने का अधिक अवसर मिलता। परमात्मा साक्षी है कि हमारा हृदय कितना व्याकुल हुआ है कि हम भी उसके साथ कुछ प्रेम व्यवहार करते। पर उसने तो हमसे कुछ चाहा ही नहीं, और

न उसे कुछ आवश्यकता थी। वह तो ऐसा था मानो उसे संसार की किसी वस्तु से संबंध ही नहीं, और उसकी इच्छाएँ बिल्कुल पूर्ण हो चुकी हों। वह तो फ़रिश्तों की तरह किसी वस्तु की परवा ही नहीं करता। बस, अपने ही में मग्न है। और फ़रिश्ते ऐसे हो हो भी सकते हैं!

रीशा—और जब वह अन्त में हमारी दृष्टि से लुप्त हो गया, तो—

नातन—लुप्त हो गया? आखिर कैसे?—खजूरों के नीचे?—फिर नहीं दिखाई दिया? यह बात क्या है?—मालूम होता है तुम लोगों ने उसे कहीं और भी ढूँढा है—

दाया—नहीं, हमने तो नहीं ढूँढ़ा।

नातन—नहीं ढूँढा! दाया, ऐसा भी हो सकता है? अब ज़रा अपने उन बुरे स्वप्नों की वीभत्सता देखो। तुम लोग भी बड़ी पागल हो। तुम्हें भी क्या २ आनन्द के स्वप्न दिखाई दिया करते हैं! और जो तुम्हारा फरिश्ता बीमार पड़ा कुढ़ रहा हो, तो?

रीशा—बीमार!

दाया—नहीं, यह नहीं हो सकता। कदापि नहीं।

रीशा—मेरा तो जैसे सारा शरीर काँप रहा है। दाया, मैं तो सुन्न हुई जा रही हूँ। मेरा माथा तो देखो। अभी अभी गर्म था। इतनी सी देर में ठंढा बर्फ़ हो गया।

नातन—वह कोई फ़िरंगी है। हमरे गर्म देश में रहने का उसे अभ्यास नहीं है। अभी उमर भी कम है। कष्ट उठाना नहीं जानता, और अपने धर्म के उपवास व्रत और रात्रिकाल की उपासनाओं का भी उसे अभ्यास नहीं है।

रीशा—बीमार है! बीमार!

दाया—नहीं, बेटा। नातन का अर्थ यह है कि ऐसा भी होना संभव है।

नातन—हाँ, हाँ। वह पड़ा हुआ है। न उसके पास कोई मित्र है और न इतना रुपया है कि कोई आदमी ही नौकर रख सके।

रीशा—पिता जी, अब क्या होगा?

नातन—वह बेचारा योंही पड़ा है। न कोई देखने भालने वाला है, न सहानुभूति करनेवाला और न सहायक। वह विपत्ति और मृत्यु का शिकार है।

रीशा—कहाँ, कहाँ ? कौन ?

नातन—वही जो एक ऐसी लड़की के लिए आग में कूद पड़ा था, जिसे उसने कभी देखा भी न था—

दाया—नातन, बस, अब बेचारी लड़की पर दया करो।

नातन—जो परमेश्वर की सृष्टि उस जीव से जिसे उसने बचाया था बात भी नहीं करता, उसकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता—केवल इसलिए कि कहीं उसे धन्यवाद ग्रहण न करना पड़े--

दाया—नातन, बस अब इस बेचारी पर दया करो।

नातन—न उसे फिर कभी देखना चाहता है, सिवा इसके कि उसे फिर किसी और आपदा से बचाये। अब तुम ही कहो कि वह सिवा मनुष्य के और कौन हो सकता है ?

दाया—ज़रा सुनो तो सही। ज़रा देखो तो—

नातन—और अब अपनी मृत्यु के समय, सिवा इसके कि उसे अपने पुण्यकार्य का ज्ञान है, और कोई चीज़ उसे आराम देनेवाली नहीं है।

दाया—बस, जाने दो। तुम तो इस बेचारी को मारे डालते हो !

नातन—और तुम उस बेचारे को मारे डालती थीं। कदाचित् मार भी डाला हो। रीशा, रीशा, सुनो, मैंने तुम्हें यह ओषधि दी है, विष नहीं दिया। विश्वास करो वह जीता है। ज़रा सम्हलो। सम्भवतः वह बीमार नहीं है, बिल्कुल नहीं।

रीशा—पिता जी, तुम्हें विश्वास है कि वह मरा नहीं? बीमार भी नहीं? ऐं?

नातन—हाँ, निश्चय जानो नहीं मरा। परमेश्वर इस पृथ्वी में मनुष्यों को उनके पुण्यकार्यों का प्रतिफल देदिया करता है।—अच्छा, बेटा, अब तुम जाओ। परन्तु सुनो, मैं तुम्हें एक बात बताता हूँ। और वह यह है कि श्रद्धा के उद्वेग में आजाना बहुत सहज है पर पुण्यकार्य करना बहुत कठिन है। आलसी और दुर्बल मनुष्यों का स्वभाव है, चाहे उन्हें इसका अनुभव न हो, कि वे श्रद्धा के उद्वेग से झूमने लगते हैं, और इस बहाने पुण्यकार्य करने के कष्ट से बच जाते हैं।

रोशा—पिताजी, अब मुझे कभी अकेला मत छोड़ना। —तो क्या तुम्हारा विचार है वह कहीं और चला गया ?

नातन—हाँ, और नहीं तो क्या ? अच्छा, अब तुम जाओ—जाओ।—पर हाँ, वह मुसलमान कौन है जो इस तरह आश्चर्य से मेरे लदे फंदे ऊटों को देख रहा है ? तुम इसे जानती हो ?

दाया—[रोशा चली जाती है] ऐं ! भूल गये ? यह वही तुम्हारा दरवेश है।

नातन—वह कौन ?

दाया—ऐं ! तुम्हारा वही दरवेश जो तुम्हारे साथ शतरंज खेला करता था। हाँ, वही तो है।

नातन—हाफ़ी ?—यह तो वह नहीं है।

दाया—हाँ, बात यह है न, कि वह अब सुलतान का ख़ज़ांची हो गया है।

नातन—हाफ़ी ?—अब फिर तुम अपने वही स्वप्न देखने लगीं।—हाँ, हाँ यह तो सचमुच वही है—लो, वह तो इधर आ रहा है। जाओ, शीघ्र भीतर चली जाओ। देखें, क्या संवाद लाया है।

तीसरा दृश्य

नातन और दरवेश

दरवेश—हाँ, ज़रा खूब अच्छी तरह आँख फाड़कर देखो।

नातन—अरे मियाँ, यह तुमही हो या कोई और है?—दरवेश और यह ठाठ!

दरवेश—फिर क्यों न हों? क्या दरवेशों से पृथ्वी का और कोई काम लिया ही नहीं जा सकता?

नातन—हाँ, कदाचित्।—मगर, भाई, मेरा तो यही विचार है कि सच्चे दरवेश को कभी यह ख्याल न आता होगा कि उससे और कुछ भी काम लिया जायेगा।

दरवेश—परमेश्वर के प्रेरित पुरुष की दुहाई! संभव है मैं असली दरवेश न हूँ पर जब कोई बाध्य हो जाये तो—

नातन—बाध्य हो जाये! दरवेश?—दरवेश, और बाध्य हो जाय! कोई बाध्य ही क्यों हो? और फिर विशेषतया एक दरवेश? अच्छा, तो वह किस बात के लिए बाध्य हो जाये?

दरवेश—इस बात के लिए कि उससे किसी कामको कहा जाये—बल्कि खुशामद की जाये—और वह यह भी समझता हो कि काम अच्छा है, तो वह दरवेश ऐसा काम करने के लिए बाध्य है।

नातन—हाँ, यह तो तुम सच कहते हो—आओ मियाँ, आओ। ज़रा तुम्हें हृदय से लगा लूँ—तुम अब भी मेरे मित्र हो ?

दरवेश—मियाँ, पहले यह क्यों नहीं पूछ लेते कि अब मैं क्या हो गया हूँ ?

नातन—उँह! चाहे तुम कुछ ही हो गये हो!

दरवेश—अच्छा, यदि मैं राज्य का छोटा सा चाकर हो गया हूँ, और इस कारण तुम मेरी मित्रता को पसंद न करो तो ?

नातन—यदि तुम्हारा दिल अबभी दरवेश है तब तो मुझे कोई चिन्ता नहीं, किसी तरह निबाह ही लूंगा। रहा तुम्हारा पद—मेरी निगाह में तो उसका मान उतना ही है जितना तुम्हारे इस कपड़े का—बस।

दरवेश—और जो तुम्हें उस पद का मान करना पड़े—तब ? भला, बूझो तो वह क्या पद है ? क्यों ? क्या सोचने

लगे?—अच्छा, यह बताओ कि यदि तुम राजा होते तो मैं तुम्हारे दरबार में क्या होता?

नातन—दरवेश होते और क्या होते, या ज्यादा से ज्यादा तुम मेरे—रसोइया होते।

दरवेश—ठीक है, कि आपके पास रह कर सीखा सिखाया भी भुला देता।—क्या बात कही है—रसोइया! आपने खानसामाँ ही क्यों न कह दिया?—मैं सच कहता हूँ आपसे ज्यादा तो सलाहुद्दीन मेरा सम्मान करता है। मैं उसका खजांची हो गया हूँ।

नातन—तुम?—सुलतान के यहाँ हो?

दरवेश—मेरा मतलब यह है कि मैं उसके अपने खज़ाने का दारोगा हूँ। सरकारी खज़ाना अब भी उसके बाप के हाथ में है—मैं केवल उसके घर का खज़ानची हूँ।

नातन—उसका घर भी तो बहुत बड़ा है।

दरवेश—बल्कि जितना तुम समझते हो उससे भी बड़ा। वह हर साधु-संत को अपने घराने में समझता है।

नातन—परन्तु सलाहुद्दीन को तो इन अभागों से इतनी घृणा है—

दरवेश—कि उसने क़सम खाली है कि उनको सिरे से मिटा ही कर छोड़ूंगा, चाहे ऐसा करने में मियाँ साहब स्वयं भी फ़क़ीर हो जायें।

नातन—हाँ, यही मैं भी कहने को था।

दरवेश—बल्कि यों कहो—कि वह अभी से कंगाल हो गया है। प्रत्येक दिन संध्या तक उसका खज़ाना खाली, बल्कि खाली से भी बदतर हो जाता है। प्रातःकाल जो एक ज्वारभाटा सा आता है वह दोपहर तक उतर उतरा कर खतम भी हो जाता है।

नातन—क्योंकि उसके एक हिस्से को नहरें चूस जाती हैं जिनका रोकना और बंद करना बिल्कुल असंभव है।

दरवेश—ठीक!

नातन—मैं सब जानता हूँ।

दरवेश—प्रथमतः तो यही बुरा है कि बादशाह गिद्धों की तरह मुर्दों पर जा पड़ें। पर यह इससे भी दसगुना ज्यादा बुरा है कि वह स्वयं ही गिद्धों के सामने मुर्दे बन जायें।

नातन—नहीं, दरवेश! अब ऐसा भी न कहो।

दरवेश—साहिब, यों कह देना तो बहुत आसान है। चलिए, यदि मैं अपने पद से अलग हो जाऊँ, और आपको अपनी जगह करा दूं, तो बताइए आप मुझे क्या देंगे?

नातन—अच्छा, तुम्हें आमदनी क्या होती है?

दरवेश—मुझे? कुछ ज्यादा नहीं। परन्तु तुम तो इससे मोटे हो जाओगे, कारण जब उसका संदूक खाली हो जाये और ऐसा बहुधा होता है तो तुम मजे में अपनी थैलियों का मुँह खोल देना। खूब धड़ाधड़ क़र्ज़ देना और सूद दर सूद में जितना चाहना पेट भर कर अदा कर लेना।

नातन—सूद दर सूद के लाभ पर भी ब्याज? क्यों?

दरवेश—हाँ, और क्या?

नातन—और इस तरह होते होते मेरी सारी पूंजी सूद दर सूद का एक बड़ा भारी ढेर हो जायेगी।

दरवेश—ललचाते तो जरूर होगे, दोस्त! और यदि सचमुच तुम नहीं चाहते तो अभी दोस्ती के खतम हो जाने की दस्तावेज लिख दो। नातन, मुझे तुमपर बड़ा भरोसा था।

नातन—यह क्या? दरवेश तुम्हारा मतलब क्या है?

दरवेश—मतलब यह है कि मैं समझे बैठा था कि बस अब मेरा खाता तुम्हारे यहाँ खुल जायेगा और इस प्रकार मुझे अपने कर्त्तव्य के पालन करने में पूरी सहायता मिलेगी। पर तुम सिर हिलाते हो ?

नातन—देखो, भई ! अब कुछ भ्रम न रखना, और इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि—कि नातन के पास जो कुछ है उसे दरवेश हाफ़ी सब समय अपने काम में ला सकता है। पर हाँ ! वह हाफ़ी वह—सलाहुद्दीन का सेवक जो—जो—

दरवेश—हाँ, हाँ, यह तो अच्छी तरह समझता हूँ और जानता हूँ कि तुम जितने बुद्धिमान हो उतने ही पुण्यवान् भी हो। तुमने जिनको हाफ़ियों का भेद बताया है वह बहुत जल्द एक दूसरे से अलग हो जायेंगे। देखो, मेरे पद की यह वर्दी मुझे सलाहुद्दीन ने दी है। याद रखो कि अभी इसका रंग उतरने भी न पायेगा और यह फटने भी न पायेगी—और दरवेश का पहनावा ऐसा ही होना भी चाहिए—कि यह जेरूसलम में किसी खूँटीपर टंगी होगी, और मैं हलके फुलके कपड़े पहने नंगे पाँव अपने गुरुजनों के साथ यहाँ से दूर

हिंदुस्तान में गङ्गा जी की जलती हुई रेती में फिरता दिखाई दूँगा। समझे ?

नातन—तुम से ऐसी ही आशा है।

दरवेश—बल्कि उनके साथ शतरंज भी खेलूँगा।

नातन—इससे बढ़कर तुम्हें और क्या संपत्ति चाहिए ?

दरवेश—अच्छा, अब यह सोचो कि इस पद को स्वीकार करने में मुझे लाभ क्या था। तुम समझते होगे कि मैंने धन के लिए ऐसा किया, कि फिर मुझे किसी से भीख न मांगनी पड़े और दूसरे निर्धनियों में धनी बनकर रहने लगूँ, और मुझमें इतनी शक्ति हो जाये कि किसी धनी साधु को एक दम से निर्धन-धनी बना दूँ।

नातन—नहीं, मैं यह तो नहीं समझता था कि तुम्हारी यह इच्छा होगी।

दरवेश—हाँ, बात कुछ और ही है, और इससे भी ज्यादा अनुचित है। सच्ची बात यह है कि आज तक मैं किसी की खुशामद के दम में नहीं आया, पर अब जो सलाहुद्दीन एक पागलपने में पड़ गया तो उसकी इस पुण्य प्रवृत्ति ने मुझे फुला दिया।

नातन—वह क्या ?

दरवेश—सलाहुद्दीन ने कहा कि "एक फ़कीर ही अच्छी तरह बता सकता है कि फ़क़ीर बेचारे किस आफ़त में पड़े रहते हैं। और उसे यह भी अनुभव रहता है कि फ़क़ीरों को किस तरह जी खोल कर दान दिया जाये। तुझसे पहले जो व्यक्ति मेरे यहाँ ख़ज़ानची था वह बड़ा ही रूखा, फीका, सूखा और निर्दय सा व्यक्ति था। जब कभी रुपये देता भी था तो बहुत ही कठिनाई से। प्रत्येक मनुष्य का हाल खोद २ कर पूछता था। किसी को आवश्यकता जानकर के भी उसको संतोष नहीं होता, वरन् आवश्यकता का कारण भी पूछता था कि उसके अनुसार संभल कर और नाप तोल कर दे। पर—हाफ़ी ऐसा नहीं कर सकता, और उसके कारण सलाहुद्दीन ऐसा कठोर हृदय और कंजूस भी नहीं मालूम होगा। वह कुछ पानी का रुका हुआ नल थोड़े ही है कि अंदर साफ़ साफ़ पानी जाता है पर निकलता है तो गंदा होकर और रुक रुक कर। हाफ़ी मेरी ही तरह सोचता है, और उसमें मेरा ही सा अनुभव भी है।" -तो समझे भी? यों चिड़ीमार ने बाँसुरी बजाते २ अंत में चिड़िया को फाँस ही लिया। मैं भी कैसा मूर्ख हूँ। एक मूर्ख के हाथों मूर्ख बन गया।

नातन—ठहरो, ठहरो। यह क्या बक रहे हो ?

दरवेश—और क्या जी ! लो, अब यह परले दर्जे की मूर्खता नहीं तो और क्या है कि मनुष्य हज़ारों पर अत्याचार करे, उन्हें बरबाद करके रख दे, लूट खाये, उनका सत्यानाश कर दे, बिना कारण उन्हे सताये—और यह सब केवल इस-लिए कि कुछ लोग उसे बड़ा दानी समझें ! तुम ही कहो कि यह मूर्खता है और व्यर्थ है या नहीं, कि मनुष्य ज़बरदस्ती परमात्मा के अनुग्रह और दया की नक़ल करे ? उसकी अनुग्रह तो अच्छे बुरे सब के लिए समान है। उसकी धूप की किरणें और मेह के छींटे बस्ती और मरुभूमि दोनों ही जगह समान रूप से पड़ती हैं। यह तो मनुष्य तब करे कि जब उसका ख़ज़ाना भी परमात्मा के ख़ज़ाने की तरह भरपूर हो। यह मूर्खता नहीं तो और क्या है कि—

नातन—अच्छा बस अब रहने दो। ख़तम करो।

दरवेश—नहीं, ज़रा मुझे अपनी मूर्खता तो बता लेने दो। यह मूर्खता नहीं तो और क्या है कि मैं ऐसी २ मूर्खताओं में भलाई ढूंढता फिरूँ, और फिर भलाइयों के लिए इन मूर्खताओं में स्वयं ही योगदान करूँ। क्यों ? अब इसका क्या जवाब है ?

नातन—हाफ़ी ! देखो मैं बताऊँ। तुमसे जितनी जल्द हो सके अपनी मरुभूमि का रास्ता लो। मुझे डर है कि तुम मनुष्यों में रहते २ कहीं मनुष्यत्व से भी न जाते रहो।

दरवेश—हाँ, भई। तुम ठीक कहते हो। मुझे भी यही डर था। अच्छा, तो अब अनुमति हो।

नातन—भला, अब ऐसी भी क्या जल्दी है ? हाफ़ी ! ठहरो तो सही। अरे मियाँ ! मरुभूमि भागी जाती है क्या ? [अपने आप से] वह सुन भी रहा है कि नहीं—अरे मियाँ, होत् !—वह तो चला भी गया। उफ़्फ़ोह ! कैसी चूक हुई है ! मैंने उससे अपने उस टेंपलर का हाल भी न पूछा—उसे अवश्य उसका हाल मालूम होगा।

चौथा दृश्य ।

दाया जल्दी २ घबराई हुई नातन के पास आती है ।

दाया—नातन ! नातन !

नातन—हाँ, क्या है ? क्या चाहती हो ?

दाया—ऐ ! वह फिर दिखाई दिया है ! वह फिर वहाँ आया है !

नातन—कौन, दाया ? कौन ?

दाया—वह ! वह !

नातन—वह—वह—वह तो बहुत से मारे फिरते हैं। आखिर कुछ मालूम भी हो कौन ? पर हाँ ! मैं समझा—तुम्हारा "वह" तो एक ही है।— यह नहीं हो सकता। चाहे वह फ़रिश्ता ही हो, ऐसा नहीं हो सकता।

दाया—वह फिर खजूरों के नीचे आकर टहल रहा है, और कभी २ खजूरें भी तोड़ता है।

नातन—और खाता भी है ?—टेंपलर हो कर भी ऐसा करता है !

दाया—तुम मुझे अकारण क्यों सताते हो? लड़की की उत्सुक आँखों ने उसे पहले ही खजूरों के उस झुंड में भाँप लिया है, और वह जहाँ जाता है उसी को ताकती रहती है। वह तुमसे बड़ी खुशामद से क़स्में दिलाकर कहती है कि तुम अभी अभी उसके पास चले जाओ। ज़रा जल्दी करो। वह कटहरे में से तुम्हें इशारे से बता देगी कि वह अब भी वहीं फिर रहा है या उधर खेतों की तरफ़ निकल गया है। नातन, जल्दी करो, ज़रा जल्दी!

नातन—अभी तो मैं ऊँट पर से उतरा ही हूँ। क्या यों ही चला जाऊँ? यह भी कोई ढंग है? तुम स्वयं ही क्यों न चली जाओ, और उससे कह दो कि मैं लौट आया हूँ। निश्चय जानो वह गबरू मेरे घर से इसी लिए बचा २ फिरता है कि मैं घर का मालिक यहाँ नहीं था। और अब जो रीशा का बाप उसे इस तरह बुला रहा है वह ख़ुशी ख़ुशी आ जायेगा। —जाओ, जाकर उससे कह दो कि मैं बुला रहा हूँ और दिल से चाहता हूँ कि वह आ जाये।

दाया—इससे कुछ लाभ नहीं होगा। वह तुम्हारे पास

कभी जो आये।—साफ़ ही क्यों न कहूँ कि वह किसी यहूदी के यहाँ नहीं जाता। बस!

नातन—फिर भी तुम जाओ तो सही! और कुछ नहीं तो उसे ज़रा वहाँ ठहरा ही लो। और जो यह भी न हो सके तो कम से कम उसे अपनी आँखों के सामने रक्खो।—जाओ, मैं भी तुम्हारे पीछे ही पीछे आता हूँ।

[नातन मकान के अंदर जाता है और दाया बाहर जाती है।]

पाँचवाँ दृश्य।

एक विस्तीर्ण जगह जिसमें खजूरों के पेड़ छाया किये हुये हैं। एक टेंपलर खजूरों में इधर उधर टहल रहा है। मठ का एक बेचारा संन्यासी उसके पाछे पीछे कुछ दूर पर चला आता है और ऐसा मालूम होता है कि टेंपलर से कुछ कहना चाहता है।

टेंपलर—[दिल में] स्पष्ट है कि यह आदमी केवल समय काटने के लिए मेरे पीछे नहीं फिर रहा है—यह मेरे हाथों को किस तरह कनखियों से देख रहा है! [संन्यासी से] भाई साहब! . . . या कदाचित् यों कहना चाहिए कि बाबा साहब—ऐं?

संन्यासी—नहीं, साहब! केवल संन्यासी, वरन् केवल एक ग़रीब संन्यासी। आज्ञा कीजिए।

टेंपलर—हाँ, तो संन्यासी जी! भला मेरे पास क्या धरा है? परमात्मा जाने मेरे पास कुछ भी नहीं है।

संन्यासी—अच्छा, मैं फिर भी आपको आंतरिक धन्यवाद देता हूँ। आप जो कुछ देते हो परमात्मा आप

को उससे हज़ार गुना ज़्यादा दे। दानी के लिए दिल चाहिए, फिर दान से क्या ? और मुझे आपके पास भिक्षा माँगने के लिए भेजा भी नहीं गया है।

टेंपलर—तो क्या आपको भेजा गया है ?

संन्यासी—जी हाँ, मठ से।

टेंपलर—जहाँ से मुझे अभी आशा थी कि यात्रियों का थोड़ा सा अन्न मिल जायगा।

संन्यासी—बात यह है कि रसोइया पहले ही से घिर गया था। पर आप अब मेरे साथ वापस चलिए।

टेंपलर—वह क्यों ? यह तो ठीक है कि मुझे मांस खाये हुए एक युग हो गया है, पर अच्छा, इसमें हानि क्या ? अब तो खजूरें भी पक गई हैं।

संन्यासी—महाशय, आप इस फल की ओर से यदि उदासीन ही रहें तो अच्छा है। ज़्यादा खाया जाये तो इससे उलटी हानि ही होती है। यह प्लीहा को बढ़ाता है और बुरा खून पैदा करता है।

टेंपलर—मान लीजिए मुझे पागलपन ही पसंद हो तो फिर ? परन्तु महाशय, यह तो स्पष्ट है कि आपको मेरे पास

इस बात की ताकीद करने के उद्देश से नहीं भेजा गया है।

संन्यासी—जी नहीं, पर मुझे आपका पता लगाने और हाल चाल जानने के लिए भेजा गया है।

टेंपलर—और आप मुझ ही से ऐसा कह भी रहे हैं। खूब!

सन्यासी—क्यों न कहूँ?

टेंपलर—[दिल में] यह भी कोई बड़ा ही चतुर संन्यासी मालूम होता है। [सन्यासी से] तो क्या आपके मठ में आप जैसे और महाशय भी हैं?

सन्यासी—मुझे नहीं मालूम। पर महाशय, आखिर मुझे आज्ञा पालन तो करना ही है।

टेंपलर—तो क्या आप निःशंक आज्ञा पालन करते हैं?

सन्यासी—महाशय, यदि शंका ही करूँ तो फिर आज्ञापालन करना ही क्या हुआ?

टेंपलर—[दिल में] देखा न? अन्त में सादगी ही की जीत रहती है।—[संन्यासी से] देखिए, आप मेरा विश्वास कीजिए और यह बता दीजिए कि वह कौन महा-

शय हैं जो इस तरह मेरे हाल की छान बीन कर रहे हैं? और यह तो मैं शपथ करके कह सकता हूँ कि आप स्वयं वह व्यक्ति नहीं है।

संन्यासी—भला ऐसा करना मेरे लिए उचित है? या मुझे इससे कुछ लाभ हो सकता है?

टेंपलर—फिर वह है कौन जिसके लिए ऐसा करना भी उचित है और उसे इससे लाभ भी है? आखिर उसे मेरे बारे में इतना कुतूहल क्यों है? वह ऐसा कौन मनुष्य है?

संन्यासी—मेरे जानते तो ऐसा व्यक्ति धर्माध्यक्ष है। उसीने मुझे आपके पीछे भेजा है।

टेंपलर—धर्माध्यक्ष जी! क्या उन्हें यह भी मालूम नहीं है कि इस सफ़ेद पहनावे पर इस लाल क्रॉश का क्या अर्थ है?

संन्यासी—जी हाँ! यह तो मैं भी जानता हूँ।

टेंपलर—अच्छा, संन्यासी जी, यों ही है तो लीजिए सुनिए। मैं एक टेंपलर हूँ और क़ैदी हूँ। वरन् यह भी बताये देता हूँ कि मैं तबनीन में गिरफ़्तार हुआ था, अर्थात् उस क़िले में जिसे हम अस्थायी सन्धि के बिल्कुल अन्त

समय में विजय करने के इच्छुक थे और उसके बाद सूर पर धावा करनेवाले थे। अच्छा, इतना और भी कहे देता हूँ कि मैं बीसवाँ क़ैदी था और सुलतान सलाहुद्दीन ने केवल मेरे ही प्राण बचाये थे। अब तो आपका धर्माध्यक्ष जो कुछ जानना चाहता है जान गया न? बल्कि यों कहिए कि उसकी इच्छा से भी ज़्यादा मालूम हो गया।

संन्यासी—पर यह तो उससे ज़्यादा नहीं जितना वह पहले से जानता है। और अब वह यह जानना चाहता है कि इसका क्या कारण है कि सलाहुद्दीन ने केवल आप ही के प्राण बचाये। उसे किसी और पर क्यों दया न आई?

टेम्पलर—मैं ख़ुद ही नहीं जानता, बताऊँ क्या? हुआ यह कि मैं अपनी गर्दन नंगी करके अपने चोग़े पर घुटनों के बल बैठा हुआ तलवार के वार की प्रतीक्षा कर ही रहा था कि सलाहुद्दीन ने मुझे ध्यान से देखना आरंभ किया, फिर एकबार ही उछल कर मेरे पास आकर खड़ा हो गया और कुछ इशारा किया। मुझे उठा लिया गया और मेरी बेड़ियाँ तोड़ दी गईं। मैंने धन्यवाद देना चाहा, देखता क्या हूँ कि उसकी आँखों में आँसू डबडबा रहे हैं और वह भी मेरी तरह गुम-सुम खड़ा है। वह चला गया, और मैं

जीवित रह गया। अब इस पहेली का जो कुछ भी मतलब हो उसे धर्माध्यक्ष स्वयं ही सुलझा सकता है।

संन्यासी—वह इससे यह नतीजा निकालता है कि परमात्मा ने आपको किसी बड़े और आवश्यक कार्य के लिए बचा लिया है।

टेंपलर—जी हाँ, बड़े आवश्यक कार्य के लिए! एक यहूदी की लड़की को आग में से निकालने के लिए यात्रियों के क़ाफले को तूरे सैना पर पहुँचाने के लिए, और इसी प्रकार और कामों के लिए—और क्या ?

संन्यासी—अभी तो वह बड़े बड़े काम होनेवाले हैं, महाशय! और उस समय तक यह भी कुछ बुरा नहीं है जो आप कर चुके हैं। संभवतः धर्माध्यक्ष ने स्वयं आपके लिए भारी काम ठीक कर रखा है।

टेंपलर—संन्यासी जी, क्या सचमुच आपका यह विचार है ? मालूम होता है कि वह इस बारे में कुछ कह चुका है—क्यों ?

संन्यासी—जी हाँ! परन्तु पहले मुझे आपकी परीक्षा करनी है कि आप उस काम के आदमी हैं भी कि नहीं।

टेंपलर—बहुत अच्छा! तो लगे हाथ परीक्षा कर ही

डालिए। [दिल में] मैं भी तो देखूँ यह कैसे परीक्षा करता है।—जी हाँ !

संन्यासी—बहुत सहज उपाय यह है कि मैं धर्माध्यक्ष की इच्छा आप पर प्रकट कर दूँ।

टेंपलर—जी !

संन्यासी—बात यह है कि वह आप के हाथ कोई पत्र भेजना चाहता है।

टेंपलर—मेरे हाथ ? मैं कोई प्यादा तो हूँ नहीं। बस, यही मतलब था ? यही वह भारी कार्य था जो एक यहूदी की लड़की को आग में से निकाल लाने से भी अधिक गौरवान्वित था ?

संन्यासी—और क्या ऐसा ही होगा। धर्माध्यक्ष जी कहते हैं कि यह पत्र तमाम खीष्ट धर्मावलंबी लोगों के लिए अत्यंत महत्त्व का है। वह कहते हैं कि जो आदमी इसे यत्न के साथ ले जायेगा परमात्मा उसे बैकुंठ में एक अत्यंत सुंदर मुकुट पहनायेगा। अच्छा, और वह यह भी कहते हैं कि आपसे अधिक और कोई व्यक्ति इस योग्य नहीं है।

टेंपलर—मुझसे ?

संन्यासी—धर्माध्यक्ष जी कहते हैं कि इस मुकुट को

प्राप्त करने की योग्यता आपसे अधिक और किसी व्यक्ति में नहीं है।

टेंपलर—मुझसे ?

संन्यासी—आप स्वाधीन हैं, और सब से बड़ी बात यह है कि आप हर जगह फिर सकते हैं। आप समझ सकते हैं कि शहरों पर किस तरह धावा किया जाये और किस तरह उन्हें बचाया जाये। अच्छा, फिर धर्माध्यक्ष यह कहते हैं कि सलाहुद्दीन ने यह भीतर वाली अर्थात् दूसरी दीवार जो अभी बनाई है उसकी मज़बूती या कमज़ोरी का हिसाब या उसका हाल आपसे अच्छा कोई मनुष्य नहीं बता सकता। और यह आवश्यक है कि जो वीर परमात्मा ही के निमित्त प्राण देने को आये हैं उनको यह बात मालूम हो जाये।

टेंपलर—प्यारे भाई ! क्या मैं आपसे यह भी पूछ सका हूँ कि इस पत्र में और क्या क्या लिखा है ?

संन्यासी—बात यह है कि यह तो मुझे भी अच्छी तरह मालूम नहीं। इतना अवश्य जानता हूँ कि यह पत्र बादशाह फ़िलिप के हाथों तक पहुँचने के लिए है। मालूम होता है कि धर्माध्यक्ष को—मुझे बहुधा आश्चर्य हुआ

करता है कि यह क्या बात है कि एक ऐसे धर्मात्मा को, जिसका जीवन परमात्मा और बैकुन्ठ ही के लिए हो, इस पृथ्वी की बातें, जो उसकी मर्यादा से बहुत नीची हैं, ऐसी अच्छी तरह ज्ञात हो—

टेंपलर—हाँ, तो धर्माध्यक्ष को ?—

संन्यासी—ठीक ठीक मालूम है, और अच्छी तरह मालूम है कि यदि फिर युद्ध छिड़ जाये तो सलाहुद्दीन किस प्रकार, कहाँ, कितने आदमियों के साथ और किस ओर से युद्ध आरम्भ करेगा।

टेंलपर—तो उसे यह मालूम है !

संन्यासी—जी हाँ। और वह यह चाहता है कि बादशाह फ़िलिप को भी इसका ज्ञान हो जाये कि स्थिति क्या है कि वह संकट का निर्णय करके यह निश्चय कर सके कि जिस प्रकार बने सलाहुद्दीन से फिर एक बार अल्पकालिक संधि की जाये जिसे आपको समाज ने ऐसी बहादुरी से तोड़ डाला था।

टेंपलर—आपके यह धर्माध्यक्ष जी भी खूब चीज़ हैं ! हाँ ! यह बात है। यह महाशय मुझे साधारण प्यादा ही नहीं वरन्—जासूस—बनाना चाहते हैं। अच्छा, तो

महाशय जी! आप अपने धर्माध्यक्ष जी से यह कह दीजिए कि जहाँ तक आप मेरी परीक्षा कर सके हैं आपने यह निश्चय किया है कि मैं इस काम के योग्य नहीं हूँ। मैं अब भी अपने आपको क़ैदी समझता हूँ और एक टैंपलर का कर्त्तव्य यही है कि वह बहादुरी के साथ लड़े। उसका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह जासूसी करता फिरे।

संन्यासी—मैं भी यही समझता था। और मुझे आपके जवाब से कोई शिकायत भी नहीं। हाँ, अभी और सुनिए। असल बात तो रह ही गई। धर्माध्यक्ष ने किसी प्रकार एक क़िले की टोह लगा ली है और यह मालूम कर लिया है कि क़िले का नाम क्या है और वह लबनान में किस जगह पर है। इसमें वह ख़ज़ाना है जिसके बल पर सलाहुद्दीन का दूरदर्शी पिता अपनी सेनाओं का प्रबन्ध करता है और अपने तमाम युद्धों का ख़र्च चलाता है। मालूम ऐसा होता है कि सलाहुद्दीन कभी कभी कुछ आदमियों को साथ लेकर गुप्त रास्तों से इस पहाड़ी क़िले को जाया करता है। आप मेरा मतलब समझ गये न?

टैंपलर—बिलकुल नहीं।

संन्यासी—ज़रा सोचिए तो कि सलाहुद्दीन पर आक्रमण करके उसका काम तमाम कर देने के लिए इससे अच्छा अवसर कभी हाथ आ सकता है?—एं! आप डरते क्यों हैं? आपको मालूम भी है कि थोड़े से धर्म-भीरु मारूनी इस काम के लिए तय्यार बैठे हैं? अब आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस महत् कार्य को पूरा करने के लिए कोई बहादुर आदमी उनका सरदार हो।

टेंपलर—और आपके धर्माध्यक्ष जी ने इस बहादुर आदमी की जगह के लिए मुझे ही चुना है?

संन्यासी—उनका विचार यह है कि फ़िलिप इस काम में सहायता देने के लिए यदि तोलेमी से आक्रमण करे तो बहुत अच्छा होगा।

टेंपलर—और, संन्यासी जी, आप मुझ ही से यह कह रहे हैं?—मुझसे? और आपने क्या मुझसे यह नहीं सुना—अभी तो सुना है—कि मैं सलाहुद्दीन का कितना ज़्यादा कृतज्ञ हूँ?

संन्यासी—जी हाँ, यह तो मैंने सुना है।

टेंपलर—और फिर भी आप ऐसा कहते हैं?

संन्यासी—जी हाँ। धर्माध्यक्ष का विचार यह है कि यह बहुत अच्छी बात है। परन्तु परमात्मा और आप की समाज—

टेंपलर—अच्छा, इन दोनों के नाम से तो कोई अंतर नहीं पड़ता—न यह परमात्मा की आज्ञा है और न मेरी समाज का मनशा है कि मैं दुराचारियों का काम करूँ।

संन्यासी—नहीं, कभी नहीं। धर्माध्यक्ष जी का विचार यह है कि—जिस काम को मनुष्य बुरा समझता है वह परमात्मा की दृष्टि में बुरा नहीं होता।

टेंपलर—सलाहुद्दीन ने तो मुझे दुबारा जीवन प्रदान किया, और मैं उसी के प्राण लेने पर उतारू हो जाऊँ?

संन्यासी—धिक्, धिक्! परन्तु धर्माध्यक्ष जी का कहना यह है कि—कि सलाहुद्दीन कुछ भी हो खीष्टधर्म का शत्रु है, और यह संभव ही नहीं कि उसे कभी यह अधिकार प्राप्त हो कि वह आपकी मित्रता का दम भरे।

टेंपलर—अच्छा, मित्र न सही, पर इतना तो हो कि मैं उसके लिए अंत में विद्रोही और अत्यन्त नीच विद्रोही तो न प्रमाणित होऊं।

संन्यासी—बिलकुल ठीक। मै स्वीकार करता हूँ। परन्तु—फिर भी धर्माध्यक्ष जी समझते हैं कि—यदि कोई विशेष कार्य जिसके लिए कोई मनुष्य किसी मनुष्य का कृतज्ञ हो, स्वयं उस मनुष्य के निमित्त न किया गया हो तो वह परमात्मा और मनुष्य दोनों की कृतज्ञता के अनुपयुक्त है। और धर्माध्यक्ष जी कहते हैं कि जब हमें मालूम है कि सलाहुद्दीन ने केवल इस कारण आपके प्राण बचाये थे कि आपके चेहरे-मुहरे में कोई ऐसी विशेष बात थी कि उससे उसे अपना भूला हुआ भाई याद आ गया, तो . . .

टेंपलर—हाँ! तो धर्माध्यक्ष जी को यह भी मालूम है! अच्छा, फिर? क्या अच्छा होता यदि ऐसा ही होता! आह! सलाहुद्दीन! यदि प्रकृति ने मेरे चेहरे में कोई ऐसी बात रख दी है जो तुम्हारे भाई के चेहरे से मिलती जुलती है तो क्या मेरे गुणों में भी कोई ऐसी बात न होनी चाहिए जो उसके गुणों से मिलती जुलती हो? और यदि कोई ऐसी बात हो तो क्या मैं केवल एक धर्माध्यक्ष की इच्छा पूरी करने के लिए उसे दबा सकता हूँ? हा प्रकृति! न तू ऐसी झूठी है, और न परमात्मा के कामों में कहीं ऐसा दोष है। संन्यासी जी, आप

जाइए। बस, अब मेरे क्रोध को ज्यादा न भड़काइए। जाइए, जाइए।

संन्यासी—जी हाँ; मैं जाता हूँ, और जितना आनन्द आया था उससे ज्यादा आनंदित होकर जाता हूँ। मुझे क्षमा कीजिएगा। परन्तु आप जानते हैं कि हम बेचारे मठ के रहनेवालों को अपने धर्माध्यक्ष की आज्ञा माननी ही पड़ती है।

छठा दृश्य

टेंपलर और दाया।

टेंपलर थोड़ी देर से दाया को कुछ दूरी से देख रहा था और अब दाया उसकी ओर देखती है।

दाया—[दिल में] मैं समझती हूँ कि इस संन्यासी ने उसे प्रसन्न कदापि नहीं छोड़ा है। अच्छा, फिर भी मुझे साहस से अपना काम कर ही आना चाहिए।

टेंपलर—[दिल में] वाह! खूब! वह कहावत सच है कि संन्यासी और स्त्री, और स्त्री और संन्यासी शैतान के पंजे हैं। आज वह मुझे दोनों पंजों में फाँस रहा है।

दाया—[दिल में] हा परमात्मन्! यह मैं क्या देख रही हूँ? [पुकार कर] ऐ धर्म्म के सिपाही! यह आप ही हैं क्या? परमात्मा की कृपा है—हज़ार २ कृपा है! पर यह तो बताइए, आप अब तक छिपे कहाँ रहे? कहीं बीमार तो नहीं हो गये थे?

टेंपलर—नहीं तो।

दाया—तो आप कुशल से तो हैं?

टेंपलर—हाँ।

दाया—महाशय ! हम लोगों को आपकी बड़ी चिंता लग रही थी।

टेंपलर—सचमुच ?

दाया—आप अवश्य कहीं बाहर गये हुए थे, न ?

टेंपलर—हाँ, ठीक है।

दाया—और अभी आज ही आये हैं न ?

टेंपलर—कल आया हूँ।

दाया—रीशा के पिता भी आज ही आये हैं। और कदाचित् अब रीशा को आशा हो सकती है···

टेंपलर—किस बात की ?

दाया—उस बात की जिसके लिए उसने मुझसे कई बार कहा है कि आपसे पूछूं। उसके पिता ने भी बड़े अनुनय से कहा है कि—आप अवश्य हमारे यहाँ आयें। वह अभी बाबुल से चले आ रहे हैं, और अपने साथ बीस ऊँटों पर जवाहिरात, मोती, और कपड़े और मसाला और परमात्मा ही जाने क्या २ भारी २ माल लाये हैं। वैसी वस्तुएँ तो फिर आप जानिए ईरान और शाम और चीन ही में मिलें तो मिलें, और कहीं थोड़े ही मिलती हैं।

टेंपलर—मुझे तो कुछ भी नहीं ख़रीदना है।

दाया—उसके भाईबंद उसका ऐसा संमान करते हैं जैसे राजकुमारों का। मुझे आश्चर्य इस बात का है कि वह लोग उसे बुद्धिमान नातन कहते हैं, धनवान् नातन क्यों नहीं कहते।

टेंपलर—कदाचित् वह यह समझते हों कि धनवान और बुद्धिमान् दोनों एक ही बात है।

दाया—यह तो सब एक तरफ़ रहा, उन्हें तो यह उचित था कि उसे पुण्यवान् नातन कहते। महाशय, आप क्या जानें वह कैसे अच्छे आदमी हैं। जैसे ही उन्हें खबर हुई कि आपने हमारी रीशा पर इतना बड़ा उपकार किया है, जो आप उस समय वहाँ होते तो, परमात्मा ही जाने, वह इसके धन्यवाद स्वरूप आपके साथ कैसा कुछ व्यवहार करते और क्या कुछ दे डालते।

टेंपलर—हाँ।

दाया - आप चाहे परीक्षा करके देखिये, आइए, वहीं चल कर न देख लीजिए।

टेंपलर—परन्तु ऐसे मुहूर्त्त कैसी जल्दी बीत जाते हैं। न ?

दाया—आप स्वयं ही समझ सकते हैं, जो वह ऐसे दयालु और ऐसे अच्छे स्वभाव के न होते तो भला मैं इतने दिन उनके यहाँ टिकनेवाली थी ? आप समझते होंगे मुझे इतनी भी खबर नहीं कि खीष्टधर्मावलम्बी मनुष्य की कितनी मर्यादा होती है। मैंने अपने झूले में कभी ऐसी लोरियाँ नहीं सुनी थीं कि मैं अपने स्वामी के साथ यहाँ पैलस्टाइन को केवल इस लिए आऊँ कि एक यहूदी की लड़की की सेवा करूँ। मेरे स्वामी बड़े ही सज्जन पुरुष थे और उन दिनों क़ैसर फ्रेडरिक के मुसाहिब थे—

टेंपलर—और वह स्विज़रलैंड के रहनेवाले थे और क़ैसर के साथ एक छोटी सी नदी में डूब मरने को अपने लिए सम्मान समझते थे और गौरव भी। यही न ?—अरे! ये बातें तो पहले भी तुम मुझे कई बार सुना चुकी हो। अब आख़िर कब तक सुना २ कर मेरा सिर खाया करोगी ?

दाया—सिर खाया करूँगी ! हा स्वर्गीय पिता !

टेंपलर—हाँ, और नहीं तो क्या ? नाक में दम ही तो कर रक्खा है। अब तो ने ठान ली है कि न तुमसे कभी मिलूँगा। और न तुम्हारी बक-बक सुनूँगा। और मुझे यह भी पसन्द नहीं कि मैं बार बार अपने उसी एक

काम का उल्लेख सुने जाऊँ जिसके करने की मैंने कभी इच्छा भी नहीं की थी। उसका ख्याल ही अब मेरे लिए बिल्कुल एक पहेली सा है। यह तो मैं नहीं कहता कि मैं वह काम करके पछता रहा हूँ। परन्तु देखो, जो अबके फिर कभी ऐसे ही काम की आवश्यकता हुई और मैं ऐसी फुर्ती से उसे न कर सका, और मैंने खूब सोच लेने के बाद भी जलनेवाले को जलकर राख हो जाने दिया, तो याद रक्खो कि उसका सारा पाप तुम्हारी ही गर्दन पर होगा।

दाया—ईश्वर ऐसा न करे!

टेंपलर—अच्छा, तो अब तुम मुझपर इतनी कृपा करो कि आज से मुझे भुला दो और याद न किया करो। और इस लड़की के पिता से भी मुझे बचाये रक्खो। यहूदी आखिर फिर यहूदी है, और मैं ठहरा अक्खड़ स्वाबी। अच्छा, अब रही स्वयं वह लड़की। सो, पहले तो उसका ध्यान मेरे दिल में रहा ही नहीं और जो कभी था भी तो बहुत दिन हुए कि मिट गया।

दाया—तुम्हारा ध्यान तो अब तक उसके दिल से नहीं निकला।

टेंपलर—नहीं, भला मेरे ध्यान का वहाँ क्या काम है ?

दाया—क्या खबर है ! लोग सदा वैसे ही थोड़े ही होते हैं जैसे वह बाहर से दिखाई पड़ते हैं ।

टेंपलर—उससे अच्छे तो कदाचित् ही होते होंगे ।

[चल देता है]

दाया—ज़रा ठहरिए तो सही । ऐसी भी क्या जल्दी पड़ी है ।

टेंपलर—अरी भलीमानस ! तू क्यों मुझे इन खजूरों से घृणा दिलाये देती है ? मुझे इनमें घूमना बहुत ही अच्छा लगता है ।

दाया—अच्छा, जाओ, मियाँ जरमन रीछ जाओ । [दिल में] फिर भी मुझे इस पशु का पता रखना चाहिये ।

[दाया कुछ दूर से उसका पीछा करती है ।]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

सुलतान का महल

सलाहुद्दीन और सित्ता शतरंज खेल रहे हैं।

सित्ता—सलाहुद्दीन, यह आपको क्या हो गया है? आज आप कैसे खेल रहे हैं?

सलाहुद्दीन—क्यों, क्या अच्छा नहीं खेल रहा हूँ? मैं कुछ सोच रहा था।

सित्ता—मेरे लिए तो अच्छा ही है। परन्तु नहीं, यह चाल भी कुछ ठीक नहीं। यह चाल वापस लीजिये।

सलाहुद्दीन—वह क्यों?

सित्ता—आपका यह घोड़ा पिट जायेगा।

सलाहुद्दीन—हाँ, सच तो है। अच्छा, लो यों ही सही।

सित्ता—अब तो मैं अपना प्यादा आगे बढ़ाती हूँ।

सलाहुद्दीन—ठीक, यह तो शह पड़ गई।

सित्ता—भला इस चाल से आपको क्या लाभ होगा ? लीजिए, फिर मैं आगे बढ़ती हूँ। और—यह देखिए ! अब आपकी फिर वही पहली सी हालत है।

सलाहुद्दीन—सच यह है कि इस गोरखधंधे से कुछ खोये बिना बचना ही कठिन है। तुम मेरे घोड़े को पीट दो, बस और क्या करोगी ?

सित्ता—मैं नहीं पीटती। छोड़े देती हूँ।

सलाहुद्दीन—तुमने मुझे कुछ बचा थोड़े ही दिया है। बात यह है कि तुम्हारे लिए यह चाल घोड़े के पीटने से ज्यादा जरूरी है।

सित्ता—हाँ, शायद।

सलाहुद्दीन—हाँ, तो यह एकतरफ़ा फैसला तो मत करो। यह देखो, लो ! चाहे बद लो, तुम्हें मेरी इस चाल का सान-गुमान भी न था। क्यों ?

सित्ता—हाँ, तो मैं यह कैसे समझ लेती कि आप अपने फ़रज़ीन से तंग आ गये हैं और पिटवा देना चाहते हैं ?

सलाहुद्दीन—फ़रज़ीन को ?

सित्ता—अच्छा, अब तो मामला साफ़ है। आज मैं अपने १००० दीनार तो जीत ही लूँगी।

सलाहुद्दीन- वह कैसे ?

सित्ता—आप यह क्यों पूछते हैं ? आप तो खुद ही ज़ोर लगा लगा कर और जान-बूझकर हारते हैं और फिर भी मैं नुकसान में रहती हूँ। एक तो ऐसे खेल में कुछ आनन्द नहीं आता, दूसरे यदि मैं हार भी जाऊँ तब भी मुझे बहुत कुछ मिल रहता है। मेरे अभ्यास की कमी के कारण आप जो मेरी सांत्वना करना चाहते हैं तो मुझे बदे हुए से भी दुगना दे डालते हैं।

सलाहुद्दीन—मेरी छोटी बहिन, मालूम हुआ तुम जब हारती हो तो जान बूझकर हारती हो। क्यों, है न ?

सित्ता—हाँ, भाई जान! कदाचित् आपकी उदारता ही इसका कारण है कि मुझे अब तक अच्छी तरह खेलना न आया।

सलाहुद्दीन—इन बातों में खेल तो हमारा यों ही रह गया। लाओ, इसे शेष ही कर डालें।

सित्ता—अच्छा, यह बात है, तो लीजिए यह शह हुई, और यह एक और शह !

सलाहुद्दीन—अरे मुझे तो इस दोहरी दोहरी शह का ख्याल भी नहीं था। अब तो मुझे डर है कि मेरा फ़रज़ीन भी गया, बल्कि मात भी हुई ही समझो।

सित्ता—देखें, अब आप कैसे बचकर भागते हैं।

सलाहुद्दीन—नहीं, नहीं। तुम मेरे फ़रज़ीन को अवश्य पीट दो। मुझे इस मुहरे से कभी लाभ हुआ ही नहीं।

सित्ता—क्या यही मुहरा ऐसा है?

सलाहुद्दीन—ले लो, पीट लो। इसमें कोई हरज नहीं। अब मेरे सब मुहरे बचे हैं।

सित्ता—मेरे भाई ने मुझे खूब अच्छी तरह सिखा दिया है कि बेगमों से अच्छी तरह सुलूक करना चाहिए।

[यह कहकर फ़रज़ीन को यों ही छोड़ देती है]

सलाहुद्दीन—अब चाहे तुम फ़रज़ीन को छोड़ दो, चाहे ले लो, अब वह मेरा तो है नहीं।

सित्ता—परन्तु आवश्यकता ही क्या है? शह!—शह!

सलाहुद्दीन—चली चलो।

सि०—शह!—और शह!—और फिर शह!

सलाहुद्दीन—और मात !

सित्ता—नहीं, पूरी मात तो नहीं है। भाई, अब भी अपने घोड़े को आगे बढ़ा दीजिए, और देखिए क्या होता है—परन्तु नहीं, अब आप जो जी चाहे कीजिए। बात वही है।

सलाहुद्दीन—बहुत ठीक !—तुम जीत गई। हाफ़ी को चाहिए कि तुम्हारा रुपया अदा कर दे। उसे जल्दी बुलाओ। सित्ता, तुमने ग़लत नहीं कहा। मैं दिल लगा कर नहीं खेल रहा था। किसी और सोच में था। आख़िर ये लोग हमें यह साफ़ बेनिशान से मुहरे क्यों दे देते हैं ? न इनमें किसी चीज़ का चित्र है और न इनसे किसी चीज़ का ध्यान ही बंधता है। शायद वे लोग यह समझ रहे होंगे कि मैं किसी इमाम के साथ खेलने के लिए मंगा रहा हूँ। —पर यह भी कोई बात है ? यह भी मैंने हार जाने के लिए एक बहाना निकाला है। भला, मेरे हारने में इन बेचारे बे-सूरत मुहरों का कोई दोष है ? तुम्हारी कलाप्रवीणता, सुदूरदृष्टि और मनोयोग ने आज तुम्हें जिताया है।

सित्ता—आप ऐसी २ बातें करके अपने पराजय होने के दुःख को भुलाना चाहते हैं। यही समझ लेना काफ़ी

है कि आप किसी सोच में थे और मुझसे ज्यादा बेदिली से खेल रहे थे।

सलाहुद्दीन—तुम से ज्यादा ? तो भई ! तुम क्यों बेदिली से खेल रही थीं ? तुम्हें क्या सोच था ?

सित्ता—अच्छा, मेरे सोच का कारण आपका सोच न था। परन्तु भाई, अब हम फिर कब वैसे ही दिल लगा कर खेलेंगे जैसे सदा खेला करते थे ?

सलाहुद्दीन—अब आगे से हम पहिले से अधिक ध्यान से खेला करेंगे। क्या तुम्हारा विचार है कि युद्ध जल्द ही छिड़ जायगा ? जितनी जल्दी हो अच्छा है। चाहे अभी हो जाय। युद्ध मेरा छेड़ा हुआ थोड़े ही है। और मैं तो अब भी अल्पकालिक संधि को बढ़ाने को तैयार हूँ, बल्कि यह भी चाहता हूँ कि वह आदमी भी मेरे हाथ लग जाये जो मेरी बहिन सित्ता का सहधर्मी होने के उपयुक्त है—मेरा मतलब रिचर्ड के भाई से है—वही, रिचर्ड का भाई।

सित्ता—बस, आपको तो सब समय अपने रिचर्ड की प्रशंसा करने की ही पड़ी रहती है।

सलाहुद्दीन—उसकी बहिन यदि हमारे सुलतान की दुलहिन बन जाती तो कैसा अच्छा घर बनता। और यह

वंश समस्त पृथ्वी का श्रेष्ठतम और उच्चतम वंश बन जाता ! सुनती हो, बहिन ? मैं अपने घरवालों की प्रशंसा करने में कुंठित नहीं हूँ। मैं अपने मित्रों के उपयुक्त हूँ। अहा ! ऐसे वंश से कैसे २ वीर पैदा होते।

सिचा—मैं सदा आपके इस आनन्दमय स्वप्न की हँसी उड़ाया करती थी कि नहीं ? न तो आपको ख़बर है और न होगी कि खीष्टधर्मावलंबी कैसे होते हैं। इन लोगों को खीष्टधर्मावलंबी होने का गौरव है, मनुष्य होने का गौरव नहीं है। और तो और, वह चीज़, जिसने इनके पैग़ंबर के जन्म के समय से उनको मूढ़विश्वास के निरे मनुष्यत्व के रंग में रंग दिया है, उसका भी ये लोग इसलिए आदर नहीं करते कि यह मनुष्य के स्वभाव में है, बल्कि इसलिए कि यह मसीह का वचन है, मसीह का कर्म है। वह तो कहिए ख़ैरियत है कि मसीह ऐसे पुण्यात्मा थे और ये लोग उनके पुण्यों को स्वीकार करते हैं। परन्तु इस श्रेष्ठता से क्या लाभ है ? क्योंकि ये लोग उनके पुण्यों का नहीं, वरन् उनके नाम का प्रचार करना चाहते हैं, कि जिससे वह और महात्माओं के नामों पर बादल की तरह छा जाये

और उनको छिपा दे। ये लोग केवल उनके नाम से मतलब रखते हैं, और बस।

सलाहुद्दीन—कदाचित् तुम्हारा मतलब यह है कि यदि ऐसा न होता तो वे लोग तुम्हारे और सुलतान के ईसाई हो जाने पर क्यों आग्रह करते, मानो ईसाई हुए बिना न कोई स्त्री अपने पुरुष से प्रेम कर सकती है और न पुरुष अपनी स्त्री से ?

सित्ता—हाँ, यही मतलब है। उनकी समझ में केवल एक ख्रीष्टधर्मावलंबी ही उस प्रेम का निर्णय कर सकता है जो सृष्टिकर्त्ता ने स्त्री और पुरुष के हृदयों में रख दिया है।

सलाहुद्दीन—ईसाई ऐसी २ बहुत सी बेहूदा बातें मानते हैं। इसलिए यदि उनका यह भी ख्याल हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु देखो तो तुम भी भ्रम में हो। इनमें से जो लोग मेरे उद्देश्यों में रुकावटें पैदा कर रहे हैं और अक्का को अपने लालची पंजों से छोड़ना नहीं चाहते, वह टेंपलर हैं, न कि ईसाई। और अक्का ही वह जगह है जिसे रिचर्ड की बहिन हमारे भाई बादशाह के यहाँ लेकर आती। फिर दूसरी बात यह है कि अपने सिपाहियाना उद्देशों को छिपाये रखने के लिये इन लोगों

को संन्यासी बनकर रहना पड़ता है, और संन्यासी भी ऐसे कि बिल्कुल सीधे सादे भोले भाले। और मजा यह है कि केवल एक क्षणिक विजय प्राप्त करने के लिए इन लोगों ने इस अल्पकालिक संधि के शेष होने की भी प्रतीक्षा नहीं की। अच्छा है। यों ही चलने दो। और क्या? चलने दो इसी तरह। इसमें मेरा कोई हानि नहीं। कैसा अच्छा होता कि और सब बातें भी वैसी ही हो जातीं जैसा कि चाहिए।

सित्ता—भाई, यह आपको क्या हो गया? अब आख़िर और किस चीज़ की घबराहट है?

सलाहुद्दीन—बात क्या होती, वही परेशानी जो मुझे सदा रहा करती है। मैं पिताजी से मिलने को 'लबनान' गया था। वह भी अपनी चिंताओं में घुले जा रहे हैं। और—

सित्ता—हाय!

सलाहुद्दीन—उनका काम किसी तरह नहीं चलता। हर तरफ़ से तंगी ही तंगी है। कभी यहाँ कमी पड़ जाती है कभी वहाँ—

सित्ता—काहे की तंगी? काहे की कमी?

सलाहुद्दीन—उसी की जिसका मैं नाम भी नहीं लेना चाहता। वही जो मेरे पास होता है तो बेकार मालूम होता है और जब नहीं होता तो बिना उसके काम चलता दिखाई नहीं देता। हाफ़ी कहाँ है? कोई उसे बुलाने गया कि नहीं? आह! यह अभागा पापी धन!—आह! हाफ़ी तुम आ गये!

[हाफ़ी आता है]

दूसरा दृश्य ।

हाफ़ी, सलाहुद्दीन, और सित्ता ।

हाफ़ी—संभवतः मिस्र देश से रुपया आ चुका है। परमात्मा की कृपा से बहुत सा हो !

सलाहुद्दीन—क्या तुम्हें इसकी ख़बर मिल चुकी है ?

हाफ़ी—मुझे ? जी नहीं, मुझे ख़बर नहीं। मेरा ख़्याल था कि आ गया होगा, और उसी को देने के लिए हुज़ूर ने मुझे याद किया है।

सलाहुद्दीन—जो कुछ हो, तुम सित्ता को १००० दीनार अदा कर दो।

[चिंता से इधर उधर टहलने लगता है।]

हाफ़ी—हुज़ूर, अदा करूँ या वसूल ? यह तो कुछ न लेने से भी बुरा हुआ। और सित्ता को ?—फिर सित्ता को ? फिर पराजय हुई ?—इस बार फिर शतरंज में हार गये ?—अहा ! बिसात तो यहीं रखी है।

सित्ता—तुम्हें मेरी जीत गवारा नहीं, क्यों ?

हाफ़ी—[बिसात को ध्यान से देखकर] क्या कहा ? गवारा नहीं ? जब आपको ख़ूब मालूम है कि—

सित्ता—[इशारा करके] हुँह !—हाफ़ी—हुँह !

हाफ़ी—[बिसात को अच्छी तरह देखकर] सरकार ! आपको तो ख़ुद ही गवारा नहीं।

सित्ता—हाफ़ी, हुश !

हाफ़ी—[सित्ता से] ये सुफ़ैद मुहरे आपके थे ? आप ही ने शह दी थी ?

सित्ता—[दिल में] अच्छा हुआ भाई ने नहीं सुना।

हाफ़ी—यह उनकी चाल है।

सित्ता—[हाफ़ी के निकट हाकर] इनसे कह दो कि मुझे रुपया अदा किया जा सकता है।

हाफ़ी—[बिसात पर झुके हुए] जी हाँ, जैसा आप सदा लिया करती हैं इस बार भी मिल जायगा।

सित्ता—क्या भद्दी बात है ! दीवाने हुए हो क्या ?

हाफ़ी—अभी खेल शेष थोड़े ही हुआ है। हुज़ूर, आप तो अब भी जीत सकते हैं।

सलाहुद्दीन—[बेपरवाही से] अच्छा, अच्छा ! तुम रुपया दे दो। दे दो।

हाफ़ी—दे दूँ, हुजूर ? दे दूँ ? हुज़ूर का फ़रज़ीन तो यह रक्खा है।

सलाहुद्दीन—[उसी तरह] अरे मियाँ ! उसकी गिनती नहीं होती। उसकी चाल ही नहीं है।

सित्ता—[अलग हाफ़ी से] बस, रहने दो। तुम कह दो कि मैं रुपये मंगा सकती हूँ।

हाफ़ी—[बिसात की परीक्षा में मग्न] जी, सरकार ! बेजा है। सदा यों ही होता है—फ़रज़ीन की चाल न सही। वह पिट ही गया सही। फिर भी किसी तरह मात नहीं है।

सलाहुद्दीन—[आगे बढ़कर और बिसात को ज़मीन पर पटक कर] हाँ, मुझे मात है। मैं यों ही चाहता हूँ, बस।

हाफ़ी—वाह ! जैसा खेल वैसी जीत। और जैसी जीत है वैसे ही बदा हुआ रुपया भी अदा किया जायेगा। बहुत अच्छा !

सलाहुद्दीन—[सित्ता से] यह क्या कह रहा है ? क्या बक रहा है ?

सित्ता—[बार बार हाफ़ी को इशारा करके] भाई, आप तो उसे खूब जानते हैं। हर काम में रोड़े अटकाता है। चाहता है कि उसकी मिन्नत की जाये। जल मरना तो है ही।

सलाहुद्दीन—तुमसे जलता है ? नहीं बहिन, तुमसे नहीं जलता होगा। हाफ़ी, मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? तुम और ईर्षा ? क्यों ?

हाफ़ी—जी हुज़ूर, शायद। हो तो सकता है। क्या अच्छा होता जो इनका सा हृदय और मस्तिष्क मेरे पास भी होता !

सित्ता—परन्तु आज तक तो भाई ने बदा हुआ पूरा पूरा अदा किया है, और आज भी पूरा ही अदा करेंगे। अब तुम इनको उमकाओ मत। लो, अब जाओ। मियाँ हाफ़ी, जाओ। मैं रुपये ख़ुद मंगा लूंगी।

हाफ़ी—जी नहीं, मैं ऐसी बेकार बात से बाज़ आया। आख़िर कभी न कभी तो बताना ही पड़ेगा।

सलाहुद्दीन—कैसे ? क्या ?

सित्ता—हाफ़ी, तुम्हारी यही प्रतिज्ञा थी ? तुमने जो मुझे बचन दिया था वह यों ही पूरा होगा ?

हाफ़ी—मुझे क्या ख़बर थी, सरकार, कि बात इतनी दूर तक पहुँचेगी ?

सलाहुद्दीन—वह है क्या आख़िर ? मैं तो ख़ाक न समझा।

सित्ता—हाफ़ी, कृपया ज़रा सोच समझकर बात करो।

सलाहुद्दान—यह तो कुछ आश्चर्य की बात मालूम होती है। वह क्या बात है जिसके लिए यह एक अनजान आदमी से इस तरह अनुनय विनय कर रही है। और तो और, एक दरवेश से! मैं आखिर इसका भाई हूँ, मुझसे क्यों नहीं कहती?—हाफ़ी, देखो, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, बोलो, वह क्या बात है?

सित्ता—भाई जान, आपको एक ज़रा सी बात के लिये इतना उद्विग्न न होना चाहिए। भला, ऐसा भी क्या है, आप अकारण ही घबराये जाते हैं। आप खूब जानते हैं मैं पहिले भी कई बार शतरंज ही में आप से इतने इतने रुपये जीत चुकी हूँ। अब इस समय न मुझे रुपये की आवश्यकता है और न हाफ़ी के ख़ज़ाने ही में इतना रुपया है। इसलिए मैं अभी उसे आपके ऊपर बक़ाया रहने देती हूँ। परन्तु भाई जान, मेरी कदापि यह इच्छा नहीं कि यह रुपये आपको दे डालूँ, या हाफ़ी के ख़ज़ाने ही पर न्यौछावर कर दूं।

हाफ़ी—परन्तु इतनी ही सी बात होती तब भी अच्छा था।

सित्ता—हाँ, ऐसे ऐसे और रुपये भी तो हैं जिन्हें मैंने धरोहर की तरह ख़ज़ाने ही के संदूक़ में छोड़ रक्खा है। अच्छा, और वह जो आपने मुझे कुछ महीने तक वृत्ति दी थी वह भी अभी बाक़ी पड़ी है।

हाफ़ी—अभी मामला शेष थोड़े ही हुआ है।

सलाहुद्दीन—अभी शेष नहीं हुआ? बताओ फिर और क्या है?

हाफ़ी—जब से हम मिस्र से रुपये के आने की प्रतीक्षा में हैं इन्होंने—

सित्ता—[सलाहुद्दीन से] भाई, आप इस आदमी की बकबक क्यों सुन रहे हैं?

हाफ़ी—केवल यही नहीं कि इन्होंने मुझसे कुछ नहीं लिया वरन्—

सलाहुद्दीन—कैसी अच्छी लड़की है! हाँ, तो यों कहो कि इन्होंने उधार भी दिया है। क्यों?

हाफ़ी—हुज़ूर, इन्होंने आपके दरबार का तमाम ख़रच अदा किया है और सदा से आपके तमाम ख़रच को इसी तरह बिना सहायता के पूरा करती रही हैं।

सलाहुद्दीन—[सित्ता को सीने से लगाकर] हाँ, निस्सं-देह, मेरी बहिन ऐसी ही है।

सित्ता—परन्तु मुझे ऐसे काम करने के लिए इतना मालदार किसने बनाया? मेरे भाई ने ही न?

हाफ़ी—इन्हें भी वह बहुत जल्द ऐसा ही कंगाल कर देंगे जैसे ख़ुद हैं।

सलाहुद्दीन—मैं कंगाल हूँ? सित्ता का भाई कंगाल है? इस समय मेरे पास जो धन है तुमही बताओ कि इससे कब ज्यादा था और कब कम—एक वर्दी, एक तल-वार, एक घोड़ा—और एक कवच? और मुझे चाहिए ही क्या? और यह धन मेरे हाथ से कहाँ जा सकता है? फिर भी, हाफ़ी, मुझे तुम से एक शिकायत है।

सित्ता—नहीं, भाई, इस बेचारे से क्या शिकायत? कैसा अच्छा होता जो मैं इसी तरह पिता जी की चिन्ताओं को भी कम कर सकती!

सलाहुद्दीन—आह! तुमने फिर मेरे आनन्द पर पानी फेर दिया। मुझे तो न किसी चीज की आवश्यकता है, न हो सकती है। परन्तु उनको आवश्यकता ही आवश्यकता है, और हम सब उनके साथ एकत्रित हैं।

अब बताओ मैं क्या करूँ। सम्भव है मिस्र से रुपये आने में अभी देर हो। मालूम नहीं यह देर क्यों हो रही है। वहाँ तो हर प्रकार की शान्ति है। मैं हाथ रोकने को, ख़रच में कमी करने को, रुपये बचाने को तय्यार हूँ, परन्तु वहीं तक जहाँ तक मुझसे सम्बन्ध हो और मेरे सिवाय किसी दूसरे को कष्ट नहीं पहुँचता। परन्तु इससे भी क्या काम चलेगा? एक घोड़ा, एक वर्दी, एक तलवार, ये चीज़ें तो मेरे पास होनी ही चाहिएँ। और कवच के विषय में भी कमी नहीं हो सकती। वह तो यों भी बहुत कम माँगता है—वह बस मेरा हृदय माँगता है और कुछ नहीं। मैं शपथ करके कहता हूँ, हाफ़ी मुझे तुम्हारे ख़ज़ाने की बचत पर बड़ा भरोसा था।

हाफ़ी—बचत? अब हुज़ूर स्वयं ही बतायें कि यदि मैं कुछ बचत दिखाता तो हुज़ूर मुझे सूली पर चढ़ा देते या नहीं? या कम से कम मेरा गला तो अवश्य घोंट दिया जाता। इससे तो रुपये हड़प कर लेने ही में कम भय था।

सलाहुद्दीन—अच्छा, तो अब बताओ क्या किया जाय? क्या तुम पहले ही यह नहीं कह सकते थे के सित्ता के सिवा किसी और से उधार लेते?

सित्ता—भाई, आप समझते हैं कि मैं अपना इतना बड़ा अधिकार छोड़ दूँगी, और वह भी उसके हाथ में? मैं तो अब भी अपने इस अधिकार की दावेदार हूँ। मैं भी ऐसी बिल्कुल कंगाल थोड़े ही हो गई हूँ।

सलाहुद्दीन—बिल्कुल कंगाल नहीं हुई? हाँ, बस इसी की कमी थी। हाफ़ी, जाओ, जल्दी जाकर प्रबन्ध करो। जिससे और जिस तरह से बने रुपये जमा करके लाओ। जाओ, प्रतिज्ञा करके उधार लो। बस इतना ध्यान रखना कि उन लोगों से उधार न लेना जिनको खुद मैंने धनवान् बनाया है। उनसे उधार लेना तो ऐसा ही है कि मानो मैं उनसे अपने अनुग्रह वापस लिये लेता हूँ। जो लोग सब से ज्यादा कंजूस हों उन्हीं के पास जाओ। ऐसे ही लोग जल्दी से रुपये देंगे भी। वह ख़ूब जानते हैं कि उनका रुपया मेरे पास कितना कुछ फलता फूलता है।

हाफ़ी—हुज़ूर, मैं तो ऐसे किसी आदमी को नहीं जानता।

सित्ता—ऐ है! मुझे अभी याद आया। हाफ़ी, मैंने सुना है तुम्हारा मित्र वापस आ चुका है।

हाफ़ी—मित्र ? मेरा मित्र ? वह कौन है ?

सित्ता—वही यहूदी जिसकी तुम बड़ी प्रशंसा किया करते हो।

हाफ़ी—यहूदी की प्रशंसा किया करता हूँ ? मैं प्रशंसा किया करता हूँ ?

सित्ता—वही जिसे परमात्मा ने—देखो, मुझे ठीक ठीक तुम्हारे शब्द याद आ गये—जिसे परमात्मा ने पृथ्वी की बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी सब प्रकार की अनगिनती सम्पत्तियाँ दी हैं।

हाफ़ी—क्या ? मैंने ऐसा नहीं कहा था, सरकार। मेरा इससे क्या मतलब था ?

सित्ता—सब से छोटी सम्पत्ति धन, और सब से बड़ी सम्पत्ति बुद्धि।

हाफ़ी—क्या, सरकार ? एक यहूदी के विषय में ? मैंने किसी यहूदी के विषय में ऐसा कहा था ?

सित्ता—अच्छा, तुमने अपने मित्र नातन के विषय में ऐसा नहीं कहा था ?

हाफ़ी—जी हाँ, सरकार ठीक है। उसके विषय में—नातन के विषय में !—मुझे उसका ख्याल भी नहीं आया

सरकार। तो यह सच है कि आख़िर वह अपने घर वापस आ गया? हाँ, तब तो, सरकार, मालूम होता है उसका काम अच्छा चल रहा है।—जी हाँ! उसे लोग किसी समय बुद्धिमान् कहा करते थे, और धनवान् भी।

सित्ता—अब तो लोग कहते हैं वह ऐसा धनवान् हो गया है कि पहिले कभी न था। शहर भर में धूम मच रही है कि वह बहुत सा धन, तथा बड़ी २ मूल्यवान् वस्तुएँ लाया है।

हाफ़ी—अच्छा, यदि वह फिर धनवान् हो गया है तब तो समझिए कि वह बुद्धिमान् भी अवश्य हो गया होगा।

सित्ता—हाफ़ी, तुम्हारा क्या ख्याल है? तुम उसी के पास क्यों न जाओ?—ए?

हाफ़ी—उसके पास क्यों न जाऊँ? उधार माँगने? सरकार, आप उसे क्या समझती हैं? भला वह उधार देनेवाला है! उसकी बुद्धि इसी में तो है कि वह किसी को उधार नहीं देता।

सित्ता—तुमने तो पहिले मेरे सामने उसका बिल्कुल और ही चित्र अंकित किया था।

हाफ़ी—अत्यंत आवश्यकता के समय वह वस्तुएँ दे देगा, परन्तु रुपये तो वह कदापि न देगा।—फिर भी और बातों में वह और यहूदियों की तरह नहीं है। वह बुद्धिमान् है, रहना जानता है, और शतरंज खूब खेलता है। परंतु केवल अच्छी बातों में नहीं, वरन् बुरी बातों में भी वह और सब यहूदियों से बढ़ा हुआ है। सरकार, उस पर कभी भरोसा न कीजिएगा।—यह सच है कि वह दीन दुःखियों को देता है और कदाचित् उतना ही देता है जितना हमारे सरकार देते हैं या यदि उतना नहीं भी देता तो उसी प्रकार आनन्द से अवश्य देता है। परन्तु है अजब तरह का आदमी। ईसाई, मुसलमान, अग्निपूजक, उसके लिए सब समान हैं।

सित्ता—वह ऐसा आदमी है तो फिर—

सलाहुद्दीन—परंतु यह क्या बात है कि मैंने इस आदमी का हाल नहीं सुना—

सित्ता—तो क्या वह भाईजान को भी उधार न देगा? सुलतान सलाहुद्दीन को भी न देगा? यह तो बेचारे औरों के लिए माँगते हैं, कुछ अपने लिए थोड़े ही लेते हैं।

हाफ़ी—सरकार, यहूदियों में यही बात है, और वह भा ऐसा नीच यहूदी !—निश्चय जानिए, हुज़ूर, मैं सच सच कह रहा हूँ कि जहाँ तक उदारता से सम्बन्ध है वह आपसे बेहद ईर्षा करता है, और ऐसा मालूम होता है कि पृथ्वी में जितनी बार "परमेश्वर तेरा भला करे !" कहा जाये, वह यह चाहता है कि वह सब उसीके लिए हो। और यही कारण है कि वह कभी किसी को कभी उधार नहीं देता, और अपने पास सब समय इतना रखना चाहता है कि लोगों को बहुत सा दे सके। परन्तु उसके धर्म ने दान-पुण्य की आज्ञा दी है परंतु मीठे बोलने की आज्ञा नहीं दी, इसलिए इसी दान-पुण्य ने उस अभागे को पृथ्वी में सब से ज्यादा अकलखुरा कर रखा है। यह तो ठीक है कि कुछ दिनों से मुझमें और उसमें कुछ मतभेद सा है, पर उससे यह ख्याल कीजिए कि मैं उसके साथ अन्याय करता हूँ। उसमें और तो सब बातें अच्छी हैं, बस एक यही बुराई है कि वह उधार नहीं देता। तो अब मैं जाकर औरों का द्वार खटखटाता हूँ—अहा ! ख़ब याद आया। मराको का एक मुसलमान है। वह धनवान् भी है और कंजूस भी—अच्छा, अब मैं चलता हूँ।

सित्ता—हाफ़ी, ऐसी भी क्या जल्दी है ?

सलाहुद्दीन—जाने दो, जाने दो।

[हाफ़ी जाता है]

तीसरा दृश्य

सित्ता और सलाहुद्दीन ।

सित्ता—[हाफ़ी को जाते हुए देखकर] वह तो ऐसी जल्दी जल्दी जा रहा है जैसे भागना ही चाहता था। आख़िर वह करना क्या चाहता है ? प्रश्न यह है कि उसने नातन के विषय में स्वयं धोखा खाया है या हमें धोखा देना चाहता है ?

सलाहुद्दीन—यह क्यों ? और मुझसे क्यों पूछती हो ? मुझे तो अब तक यही न मालूम हुआ कि तुम लोग किसके विषय में बातें कर रहे थे। मैंने तो आजतक तुम्हारे इस यहूदी नातन का नाम भी नहीं सुना था।

सित्ता—यह कैसे संभव है कि आप ऐसे आदमी को न जानते हों जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उसने हज़रत सुलैमान और हज़रत दाऊद की क़ब्रों को भी बरबाद कर डाला है। कहते हैं उसके पास एक मंत्र है, और एक सिद्धि है जिससे वह उनकी मुहरें तोड़ सकता है, और वहीं से नित्य ऐसी ऐसी मूल्यवान् वस्तुएँ निकाल

निकाल कर लाता है जिनसे मालूम होता है कि यह वहीं की हैं और कहीं की नहीं।

सलाहुद्दीन—यदि मान भी लिया जाये कि उसने अपना तमाम धन क़ब्रों ही में से खोद खोद कर निकाला है, तब भी यह स्पष्ट है कि हज़रत सुलैमान या दाऊद की क़ब्रों में से नहीं निकला है बल्कि उन क़ब्रों में से निकला है जिनमें मूढ़ लोग गड़े हुए हैं।

सित्ता—या दुराचारी लोग होंगे!—जो कुछ भी हो, कहीं से पैदा किया हो परंतु इतना अवश्य है कि उसका धन कुबेर के ख़ज़ाने से ज्यादा है, अनन्त है।

सलाहुद्दीन—यह तो स्पष्ट है, क्योंकि मैंने सुना है वह सौदागर है।

सित्ता—उसके लादनेवाले जानवर हर रास्ते पर दिखाई देते हैं। उसके काफ़ले हर मैदान में चलते हैं। उसके जहाज़ हर बन्दरगाह में खड़े रहते हैं। इसी हाफ़ी ने मुझसे बहुधा यह वर्णन किया है, वरन् वह यह भी कहा करता है कि उसका यह यहूदी मित्र अपनी इस बुद्धि और परिश्रम से कमाये हुए धन को बड़े ठाठबाट और सौजन्य से ख़रच करता है। उसका दिल धर्मद्रोहिता से बिल्कुल

पवित्र है, पुण्य प्राप्त करने को तय्यार और पुण्यकर्म करने पर तुला रहता है।

सलाहुद्दीन—परंतु इन सब गुणों के होते हुए भी वह अभी इतने संदेह के शब्दों में और ऐसी उदासीनता से उसकी बात कर रहा था।

सित्ता—नहीं, उदासीनता तो नहीं थी, घबराहट थी। उसे कदाचित् संदेह था कि कहीं वह उसकी बेहद प्रशंसा तो नहीं कर रहा है। फिर यह भी ख्याल होगा कि उस बेचारे को अकारण दोष भी न दे। क्या सचमुच यह बात है कि उसकी जाति का सर्वश्रेष्ठ आदमी भी अपनी जाति की दुर्बलताओं से बचा हुआ नहीं? कदाचित् यही कारण था कि हाफ़ी को लज्जा सी हो रही थी।—अच्छा, जो कुछ भी हो, वह और यहूदियों से, ज्यादा हो या कम, धनवान् तो वह अवश्य है, और हमारे लिए अभी इतना ही चाहिए।

सलाहुद्दीन—परंतु, बहिन, तुम उसका धन ज़बर-दस्ती तो नहीं ले सकती हो।

सित्ता—अच्छा हुआ! ज़बरदस्ती आप किसे कहते हैं? आग और तलवार के ज़ोर से? नहीं, कदापि

नहीं। दुर्बल आदमियों के लिए जबरदस्ती की क्या जरूरत है? खुद उनकी दुर्बलता ही काफ़ी है।—अच्छा भाईजान, चलिए, अन्तःपुर में चलें। मैंने अभी कल ही एक गानेवाली औरत ख़रीदी है। आपको उसका गाना सुनवाऊंगी और हाँ, मैंने नातन के विषय में एक उपाय सोचा है। इतनी देर में उस पर भी विचार कर लूँगी। आइये, चलें।

चौथा दृश्य ।

नातन के मकान के सामने जहाँ खजूरों का झुंड है ।

[नातन और रीशा बाहर आते हैं । दाया बाहर से उनकी ओर आती है ।]

रीशा—पिताजी, आपने बड़ी देर कर दी । अब तो वह नहीं मिल सकता ।

नातन—अच्छा, जो वह इन खजूरों में न मिला तो हम उसे कहीं और ढूंढगे । ज़रा शांत हो । वह देखो ! दाया हमारी ही ओर आ रही है ।

रीशा—उसने उसे कहीं भी न पाया होगा ।

नातन—नहीं, कदाचित ऐसा तो नहीं ।

रीशा—तो वह ऐसी सुस्त क्यों आ रही है ?

नातन—उसने हमें अब तक नहीं देखा, और—

रीशा—अब तो देख लिया ।

नातन—और तेज़ भी चलने लगी है । देखो, वह देखो ।—ज़रा दम लो, ठहरो ।

रीशा—पिताजी, तुम ऐसी बेटी चाहते हो जो ऐसे समय में भी शांत रहे और उस बेचारे की परवा भी न करे जिसने उसके प्राण बचाये हों ?—वह जीवन जो उसे इस लिए प्यारा है कि परमात्मा ने उसे तुम्हारे द्वारा दिया है।

नातन—नहीं, मैं तो ऐसी ही बेटी चाहता हूँ जैसी तुम हो। परंतु मैं ख़ूब समझता हूँ कि इस समय तुम्हारे हृदय को कुछ और ही तरह के भावों ने व्याकुल कर रखा है।

रीशा—वह क्या, पिताजी ?

नातन—मुझसे पूछती हो, और इतनी लज्जित होकर ? तुम्हारे हृदय पर जो कुछ बीत रहा है वह सब स्वाभाविक बात है, पवित्र है, निष्काम है। तुम किसी प्रकार की चिंता न करो। मुझे स्वयं कोई चिता या डर नहीं, परंतु—मुझसे इतनी प्रतिज्ञा करो कि जब तुम्हारा हृदय तुम से कुछ स्पष्ट-रूप से कहे तो तुम उसकी छोटी से छोटी वासना को भी मुझ से नहीं छिपाओगी। समझीं ?

रीशा—मैं तो आपही इस डर से काँपी जाती हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि मेरा हृदय आप से अपनी कोई बात छिपाये।

नातन-- अच्छा, अब इसकी बात जाने दो। इसका तो सदा के लिए निश्चय हो गया।—यह लो, दाया आ पहुँची।—कहो, क्या ख़बर है?

दाया—वह अब तक खजूरों ही के तले टहल रहा है, और अभी थोड़ी देर में इस दीवार के पास से जायगा।—ऐ, वह देखो! वह आ रहा है!

रीशा—अहा! मालूम होता है कि वह इस सोच में है कि जाऊँ किधर—आगे बढ़ूं या वापस चला जाऊँ, दाहनी ओर जाऊँ कि बाईं ओर।

दाया—नहीं, नहीं। वह कभी कभी मठ के पास से होकर जाया करता है। यदि अब भी उधर जा रहा है तो यहीं से होकर जायेगा। चाहे बद लो।

रीशा—ठीक, ठीक! तुमने उससे बातें भी कीं या नहीं? आज उसका क्या ख्याल है?

दाया—जैसा सदा होता है, और कैसा होता?

नातन—देखो, वह कहीं तुम्हें देख न ले। ज़रा और पीछे को हो जाओ, बल्कि भीतर ही चली जाओ तो अच्छा है।

रीशा—बस, एक बार और देख लेने दो, पिताजी! ओह! इस निगोड़ी झाड़ी ने उसे ओझल कर दिया।

दाया—आओ, आओ! तुम्हारे पिता ठीक कह रहे हैं। जो कहीं उसने तुम्हें देख पाया तो वह अभी अंतर्धान हो जायेगा।

रीशा—अरे! यह निगोड़ी मनहूस झाड़ी!

नातन—बुराई यह है कि तुम ऐसी जगह खड़ी हो कि यदि वह एक दम इस झाड़ी में से निकल आया तो तुम्हें अवश्य देख लेगा! एक दम चल दो।

दाया—आओ, आओ! मैं तुम्हें एक खिड़की बताऊँ। हम वहीं से उसे देखेंगे। आओ!

रीशा—सच?

[दोनों भीतर चली जाती हैं]

पाँचवाँ दृश्य ।

नातन और उसके बाद ही टेंपलर आता है ।

नातन—[अपने आप] मैं इस विचित्र आदमी से बचना चाहता हूँ। उसके इस कठिन और उग्र पुण्य से मुझे घबराहट होती है। आश्चर्य की बात है कि एक मनुष्य में ऐसी शक्ति छिपी हो कि वह किसी और मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क में ऐसी हलचल मचा दे !—यह लो, वह आ पहुँचा ! परमात्मा ही जाने ! है गबरू परंतु बड़ा वीर। मुझे यह व्यक्ति बहुत ही पसन्द है। उसकी ये पराक्रमपूर्ण दृष्टि और यह भारी भरकम चाल कैसी अच्छी मालूम होती है ! देखने में तो यह आदमी रूखा और कड़ा मालूम होता है, पर स्वभाव कदापि ऐसा न होगा। [ध्यान से] मैंने इसी रूप का मनुष्य कहीं और भी देखा है !—[टेंपलर से] भद्र फिरंगी, मुझे क्षमा कीजिएगा।

टेंपलर—क्या ? काहे की क्षमा ?

नातन—यदि अनुमति हो—

टेंपलर—क्या, यहूदी, क्या कहते हो ?

नातन—अनुमति हो तो कुछ कहूँ ।

टेंपलर—मैं तुम्हें कैसे रोक सकता हूँ ? हाँ, कहो, पर संक्षेप से ।

नातन—ज़रा ठहरिए, परमात्मा की दुहाई ! जल्दी न कीजिए । और एक ऐसे व्यक्ति के पास से अभी न जाइये जो आपके अनुग्रह के बोझ से दबा हुआ है ।

टेंपलर—वह कैसे ? अच्छा, हाँ; मैं समझ गया । मैं कदाचित् ठीक समझा हूँ कि आप—

नातन—जी हाँ ! मुझे नातन कहते हैं । मैं उसका पिता हूँ जिसको आप ने जान पर खेलकर अपने साहस से आग से निकाला है और मैं इसलिए यहाँ आया हूँ कि—

टेंपलर—यदि आप मुझे धन्यवाद देने आये हैं तो कृपा कीजिए—क्षमा कीजिए । इस छोटी सी बात के लिए मैं पहिले ही धन्यवाद का इतना बड़ा बोझ उठाये फिरता हूँ । मैंने आप पर अनुग्रह ही क्या की है ? क्या मुझे यह मालूम था कि वह लड़की आपकी बेटी है ? यह तो प्रत्येक टेंपलर का कर्त्तव्य है कि जिस मानव-संतान का

आवश्यकता हो उसकी सहायता करे। इसके अतिरिक्त उस समय स्वयं मेरा ही जीवन मेरे लिए एक भार हो रहा था। इसलिए मुझे बड़ा आनंद हुआ और यह अवसर मुझे अत्यंत सुलभ मालूम हुआ कि मैं किसी और के लिए अपना जीवन शंका में डाल दूं—चाहे वह एक यहूदी की बच्ची ही के लिए क्यों न हो।

नातन—कितनी बड़ी बात कही है! परन्तु कैसी बेहूदा बात है! और इन दोनों का संबंध समझ में भी आता है। लज्जा और प्रेम बहुधा ऐसा रूप धारण कर लेते हैं जो देखने में घृणित मालूम होता है और यह केवल इसलिए कि लोग उनकी प्रशंसा न कर सकें।—परंतु जब मेरे धन्यवाद की यह ऐसी अवहेलना करते हैं तो किसी और प्रकार के बदले को कितना कुछ तुच्छ न समझेंगे? —नाइट महाशय! यदि आप हमारे यहाँ एक अनजान और क़ैदी न होते, तो कदापि मैं ऐसी धृष्टता और साहस से बात न करता—फिर भी, अब यह बताइए कि मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

टैंपलर—आप? कुछ नहीं।

नातन—मैं धनवान आदमी हूँ।

टेंपलर—ज्यादा धनवान यहूदी को मैं कुछ ज्यादा अच्छा यहूदी नहीं समझता हूँ।

नातन—फिर भी क्या इस बात पर भी यह नहीं समझते कि उसके पास जो कुछ भी अच्छी वस्तु उपस्थित है वह आपके लिए लाभदायक हो सकती है—अर्थात् उसका धन ?

टेंपलर—बहुत अच्छा। मैं इस विषय में बिल्कुल इनकार न करूँगा। एक चोग़ा स्वीकार कर लूँगा। बस ? और जब मेरे इस चोग़े के चीथड़े हो जायँगे और इसमें रफ़ू और जोड़ की भी जगह न रहेगी, तब मैं आपके पास आऊँगा और आपसे कपड़ा या नक़द लेकर एक नया चोग़ा बना लूँगा। अब और आप क्या चाहते हैं ?—नहीं, आप घबराइये नहीं, अभी तो आप निर्भय ही हैं—अभी बात दूर तक नहीं पहुँची है। देखिए न, अभी तो इसका कुछ और भी प्रबंध हो सकता है। बस केवल इसी एक कोने पर बुरा धब्बा लग गया है, और यह भी यों लगा कि जब मैं आपकी लड़की को आग की लपटों में से निकाल कर बाहर ला रहा था तो यह हिस्सा आग में झुलस गया।

नातन—[चोग़े के झुलसे हुए हिस्से को हाथ में लेकर और उसे ध्यान से देखते हुए] वाह वा ! कितने आश्चर्य की बात है कि यह बुरा धब्बा, यह आग का चिह्न किसी के वीरत्व का ख़ुद उसके होठों से अच्छा साक्षी है ?— महाशय, मेरा जी चाहता है कि मैं इसे चूमूँ—इस मस्तक का।—अहा ! क्षमा कीजिएगा, मैंने जानबूझ कर ऐसा नहीं किया।

टेंपलर—क्या ?

नातन—यह कि इस चोग़े पर आँसू के बूँद टपकाऊँ।

टेंपलर—क्या हरज है ? इस पर ऐसी २ बहुत सी बूँदें गिर चुकी हैं। [दिल में] यह यहूदी तो मुझे बेतरह बेचैन करने लगा !

नातन—केवल इतनी कृपा कीजिए कि मुझे इस चोग़े को अपनी बेटी के पास ले जाने की अनुमति दे दीजिए।

टेंपलर—वह किस लिए ?

नातन—कि वह बेचारी इस जगह को चूम सके, क्योंकि उसे अब यह आशा तो हो ही नहीं सकती कि वह आपके पैरों को चूम सकेगी।

टेंपलर—परन्तु मियाँ यहूदी !—तुम्हें नातन कहते हैं न ?—अच्छा, तो नातन, तुम बहुत ही सुंदर, मधुर, और ओजस्वी शब्द व्यवहार करते हो। मेरी समझ में नहीं आता कि अब क्या करूँ। कदाचित् कदाचित्—

नातन—आप अपने भावों को जिस प्रकार चाहें दबायें और छिपायें, मैं आपको अच्छी तरह समझ गया हूँ। आपने उस समय जैसी उदारता, पुण्य और सज्जनता का परिचय दिया, उससे और क्या ज़्यादा हो सकता था ? आपके सामने एक लड़की थी, जो भावुकता की प्रतिमूर्ति थी, उसका संदेश लानेवाली स्त्री साक्षात् अनुरोध थी, और उस बेचारी का बाप भी घर से दूर था। ऐसे समय में आपने उसके सम्मान का इतना ख़याल रक्खा। आप इस परीक्षा से दूर रहे—इसलिए दूर रहे कि आपको विजय का निश्चय था—इस विषय में मुझे और भी अधिक आपका कृतज्ञ होना चाहिए।

टेंपलर—मैं मानता हूँ कि आपको कम से कम इतना तो अवश्य मालूम है कि टेंपलरों को कैसे भाव रखने चाहिएँ।

नातन—क्या कहा !—केवल टेंपलरों को ?—और